दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९७ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० ७

अमर होने का उपाय

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

अशांति से भरी हुई इस दुनिया में एक चैतन्यतत्त्व ही शांति का धाम है। अनित्यता एवं अशांति की घटनाएँ तो होती ही रहती हैं। वर्तमान में प्रतिदिन ऐसी घटनाएँ हो रही हैं जो संसार की असारता एवं क्षणभंगुरता का जोर-शोर से प्रचार करती हैं... और जिनका स्वरूप विचारने से मुमुक्षु का चित्त एकदम संसार से हटकर स्वरूप की शरण खोजने में तत्पर हो जाता है। संसार का ऐसा अस्थिर स्वरूप जानकर संतों ने शीघ्रता से वैराग्य का मार्ग ग्रहण किया और निजस्वरूप में स्थिर हो गये। संसार की अस्थिरता को समझाते हुए कहा है कि आकाश या पाताल में भी जीव मृत्यु से बच नहीं सकता... मृत्यु से बचाकर अमरता की ओर ले जानेवाली एक ही वस्तु है—वह है रत्नत्रयधर्म।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

नवम्बर : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३०७) एक अंक २५ पैसा [कार्तिक : २४९७

धन्य वीतराग मार्ग!

चैतन्य के परमसुख का यह वीतरागमार्ग, जगत के समस्त जीवों को प्राप्त हो जाये—ऐसा नहीं है। यह तो किन्हीं विरले जीवों को ही प्राप्त होता है। जो परोन्मुखता से हटकर स्वसन्मुख एकाग्रता करेगा उसे इस मार्ग की प्राप्ति होगी और परम सुख के अनुभव से वह कृतकृत्य हो जायेगा।

अरे जीव! ऐसे वीतरागमार्ग की प्राप्ति का अवसर तुझे प्राप्त हुआ है, इसलिये तू परम उत्साह से उसे प्राप्त कर! उसे प्राप्त करने पर—उसका अनुभव करने पर आत्मा में परम चैतन्य-आनंद की लहरें उठेंगी।

धन्य है ऐसे वीतराग मार्ग को!

❋ ❋ ❋

चारित्रदशा

अहो! चारित्रदशा तो पूज्य है, चारित्र तो आत्मा का वैभव है, वह साक्षात् केवलज्ञान को निमंत्रण देता है। चारित्रदशा में तो अत्यंत अतीन्द्रिय आनंद है। चारित्रवान मुनिराज तो अरिहंत और सिद्ध के पड़ोसी हैं। रागपरिणति से हटकर निजस्वरूप के वेदन में जो स्थिर हुए—ऐसे मुनिराज को चारित्रदशा होती है। अहो! ऐसे चारित्रवान मुनिवर मिलें तो उनके चरणों की सेवा करते हुए शुद्धात्मा के वैभव की बात सुनें। विदेहक्षेत्र में तो वर्तमान में भी ऐसे मुनिराज विचर रहे हैं।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : श्री ब्र० गुलाबचंद जैन

नवम्बर : १९७० ☆ कार्तिक : वीर नि० सं० २४९७, वर्ष २६वाँ ☆ अंक : ७

आत्माराधन की प्रेरणा

अरे जीव, यह शरीर तो अवधि पूर्ण होने पर तुझे छोड़ देगा, परंतु तू सामने से मोह को छोड़कर शरीर की प्रीति छोड़। अशुचि का पिण्ड ऐसा यह क्षणभंगुर शरीर तुझे क्यों प्रिय लग रहा है? और परम सुखमय पवित्र चैतन्यस्वभाव क्यों प्रिय नहीं लगता? एक बार आत्मा को प्रिय बना और जगत का प्यार छोड़! तेरा चैतन्यदेव तुझसे पृथक् कहीं देश-देशांतर में नहीं है, तेरा देव तुझसे किंचित् दूर नहीं है, वह तुझमें ही है। अंतर्दृष्टि से प्रयत्न करके देखे तो तुझमें ही विराजमान शाश्वत् चैतन्यदेव मुझे स्पष्ट दिखायी देगा... वही भगवान है, वही महिमावंत है, वही परम अर्थात् उत्कृष्ट होने से परमात्मा है; वही दिव्य चैतन्यदेव है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसी की सेवा तथा आराधना कर। उसकी आराधना से तू भव-समुद्र का किनारा प्राप्त कर लेगा। अंतर्मुख होकर चैतन्य के ध्यान द्वारा मोक्षसुख की प्राप्ति होती है।

(—प्रवचन से)

मोक्ष का मार्ग

परम वैराग्य-परिणतिरूप वीतरागचारित्र वह मोक्षमार्ग है, वह परमेश्वर की आज्ञा है।

आत्मा के ज्ञान-दर्शनस्वभाव में अस्तित्वरूप जो वीतराग चारित्र वह मोक्ष का हेतु है। ऐसा चारित्र राग से रहित होने के कारण अनिंदित है—ऐसा जिनभगवान ने कहा है।

जीव का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है। ज्ञान-दर्शन जीव से अनन्य हैं, इनकी रचना जीव के द्वारा ही हुई है; अर्थात् जीव स्वयं ज्ञान-दर्शन स्वरूप ही है। ऐसे स्वरूप में ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप वर्तन, सो चारित्र है, यह मोक्षमार्ग है, इसमें राग का अभाव है, इसलिये वह प्रशंसनीय है।

राग का अभाव होने से इस चारित्र को प्रशंसनीय-अनिंदित कहा, अर्थात् जिसमें राग का सद्भाव है, वह निंदित है, वह मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा अभिप्राय इसमें निहित है। राग में वर्तनरूप चारित्र को परसमय कहा है; उससे रहित स्वभाव में प्रवृत्तिरूप जो चारित्र है, वह स्वसमय है, उसी को साक्षात् मोक्षमार्ग के रूप में धारण करना।

जीव को साक्षात् मोक्ष के कारणरूप इस वीतराग चारित्र की पहिचान नहीं होने के कारण रागादिक परभावों को ही मोक्ष का कारण समझकर उनके सेवन से संसार में परिभ्रमण किया।

भाई! प्रथम निश्चय तो कर कि जीव का स्वरूप क्या है? राग कहीं जीव का अनन्य स्वरूप नहीं। जीव का स्वरूप तो ज्ञान-दर्शनमय है; इस ज्ञान-दर्शनस्वरूप में प्रवृत्ति, वह चारित्र है, उसमें राग का अभाव है। जितना अंश स्वाश्रयरूप वीतरागी चारित्र है, वह मोक्ष का कारण है। उसी को परम वैराग्य कहा जाता है।

आनंद से समृद्ध ऐसे भगवान आत्मा में विश्रांति ही चारित्र है, उसमें मोक्षसुख का अनुभव है; उसमें रागादि आकुलता का अभाव है। ऐसा वीतरागी चारित्र ही मोक्षमार्ग है। अहो! स्वतत्त्व में विश्रांति, वह परम आनंद से भरपूर है और उसमें राग का अत्यंत अभाव है—वही मोक्षमार्ग है।

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य उत्पन्न करनेवाली परमेश्वर की परम आज्ञा। अहो, राग का

अंश भी जिसमें नहीं, ऐसा परम वैराग्यरूप स्वरूपचारित्र वही जिनपरमेश्वर की परम आज्ञा है, वही भगवान का मार्ग है। राग, वह मार्ग नहीं। राग तो परसमय है, वह भगवान की आज्ञा कैसे हो सकती है ? शुभराग को ही मोक्ष का मार्ग मानता है, वह जीव भगवान की आज्ञा को जानता नहीं है। स्वसमय में प्रवृत्तिरूप परम वैराग्यपरिणति—जो कि आनंद से परिपूर्ण है, वही भगवान की आज्ञा है, वही मार्ग है।

चारित्र दो प्रकार का है—एक स्वचारित्र; दूसरा परचारित्र। स्वसमयरूप स्वचारित्र है, परसमयरूप परचारित्र है। निजस्वभाव में वर्तनेरूप स्वचारित्र है। परभाव में अवस्थित ऐसा परचारित्र है।

शुभराग भी परभाव में अवस्थितिरूप परचारित्र है। परसमय है, वह मार्ग नहीं। स्वभाव में अवस्थितिरूप जो स्वचारित्र है, वह परचारित्र से भिन्न है अर्थात् राग से भिन्न है, इसलिये वह अनिंदित है। ऐसे परम वीतराग चारित्र को भगवान ने साक्षात् मोक्षमार्ग कहा है। उसकी भावना करना चाहिये।

अरे रे, मोक्ष के कारणरूप शुद्ध वीतरागचारित्र को पहिचाने बिना, राग को मोक्ष का साधन मानकर अनंत काल अब तक मिथ्यात्व तथा रागादिक में ही लीन होकर व्यतीत हुआ; अब तो वास्तव में नियत ऐसे वीतरागचारित्र की ही निरंतर भावना करने जैसी है।

उपयोग राग के द्वारा रंजित हो, चंचल हो, वह परसमय है, अकेले शुभराग को धारण करनेवाला जीव भी स्वचारित्र से भ्रष्ट होकर परचारित्र का आचरण करता है। मोक्ष के कारणरूप चारित्र में शुभराग आता नहीं; मोक्ष के कारणरूप चारित्र, वह तो स्वचारित्र है; शुभराग परचारित्र है; दोनों भिन्न हैं। अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव में नियत-निश्चल-स्थिर परिणामरूप चारित्र यह मोक्षमार्ग है। इसके अतिरिक्त जितनी शुभ अथवा अशुभ प्रवृत्ति है, वह परचारित्ररूप है, इसलिये बंध का कारण है; उसे मोक्ष का कारण मानने का भगवान ने निषेध किया है।

शुभभावरूप विकार पुण्यास्रव है, अशुभभावरूप विकार पापास्रव है, दोनों भाव आस्रव हैं, किंतु यह कोई धर्म नहीं है; यह बंध के साधन हैं, मोक्ष के साधन नहीं। मोक्ष का साधन तो राग से भिन्न ऐसा स्वचारित्र है; यह स्वचारित्र अपने उपयोगस्वभाव के सम्यक् श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक उसमें निश्चय एकाग्रता के द्वारा प्रगट होता है—ऐसा मोक्षमार्ग, वही सच्चा वीतरागी मोक्षमार्ग है।●●

मोक्ष का हेतु तथा संसार का हेतु

[समयसार बंध अधिकार के प्रवचनों से]

❋ राग से रहित शुद्ध आत्मा के स्वानुभव में जिसकी परिणति नहीं लगी है, उसकी परिणति राग तथा पुण्यफल के भोगने में लगी हुई है।

❋ अस्ति-नास्ति के न्याय से समझाते हैं कि जहाँ शुद्धात्मा का भोक्तापन नहीं है, वहाँ राग का भोक्तापना है। जहाँ मोक्षमार्ग नहीं, वहाँ बंधमार्ग है। बंधमार्ग में तो व्यवहार का अर्थात् अशुद्ध-आत्मा का अनुभव है; यदि शुद्धात्मा का अनुभव हो तो मोक्षमार्ग होता है।

❋ अज्ञानी शुद्धात्मा के अनुभव से रहित जो कुछ भी करता है, उसमें राग का ही अनुभव है, अर्थात् संसार का ही कारण है। भले ही वह व्रत-तप का शुभराग करे, शास्त्र पढ़े, फिर भी राग के अनुभव के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं करता, अर्थात् उसका सभी संसार का ही हेतु है, मोक्ष का हेतु किंचित् भी नहीं। राग से पार ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव, वही मोक्ष का हेतु है।

❋ कैसा अनुभव संसार का कारण है ?

अशुद्धात्मा का अनुभव, वह भव का बीज है। श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा है कि—यह आत्मा कर्मकृत अशुद्ध भावों से असंयुक्त होते हुए भी अज्ञानी जीवों को यह रागादि से संयुक्त जैसा अशुद्ध प्रतिभासित होता है; उनका ऐसा प्रतिभास ही वास्तव में भव का बीज है। (गाथा-१४)

❋ अन्य प्रकार से कहा जाये तो अकेले व्यवहार का आश्रय करके आत्मा को जो अशुद्ध ही अनुभव करता है, वह जीव संसार में भ्रमण करता है। व्यवहार के आश्रय का त्याग करके शुद्धनय द्वारा शुद्धात्मा का ही अनुभव करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है।—यह महान जैन सिद्धांत है।

❋ आत्मा की परिणति के लिये दो पक्ष हैं—या तो अंतर्मुख होकर शुद्धस्वभाव में झुके

अर्थात् शुद्धात्मा का अनुभव करे; या दूसरे पक्ष—रागादि परभावों में झुके अर्थात् अशुद्धता का अनुभव करे।

❋ एक ओर ज्ञानानंदी परिपूर्ण स्वभाव है, दूसरी ओर राग-द्वेष-क्रोध-अज्ञान आदि परभाव हैं। जिस ओर रुचि करके तन्मयता करे, वैसी परिणति होती है। स्वभाव को रुचि करके उसमें तन्मय होने से आनंदमय मोक्षदशा होती है; रागादि की रुचि करके उसमें तन्मयपना मानने से दु:खरूप संसारदशा होती है।

❋ एक निजपद, एक परपद, एक शुद्ध है, एक अशुद्ध है—जहाँ रुचि हो, उस ओर प्रयाण कर। अरे जीव! जहाँ तक अपने शुद्धस्वभाव का तू स्वीकार नहीं करेगा (श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव नहीं करेगा), वहाँ तक अन्य चाहे जो करते हुए भी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता; संसार में ही भ्रमण करेगा। यदि तू मोक्ष को चाहता हो तो शुद्ध-चैतन्यमय केवलज्ञान-स्वभावी ऐसे अपने आत्मा को पहिचान।

❋ ज्ञान उसको कहा जाता है कि जो ज्ञानस्वभाव का ही आश्रय करके प्रवर्तन करे। राग का या पर का आश्रय करके प्रवर्तन करे, वह वास्तविक ज्ञान नहीं; ज्ञान का फल तो यह है कि पर से भिन्न वस्तुभूत ज्ञानमय शुद्धात्मा अनुभव में आये। ऐसा जहाँ अनुभव नहीं, वहाँ सच्चा ज्ञान नहीं।

❋ जितना पराश्रितभाव है, वह सभी बंध का कारण होने से मोक्ष के साधन में उसका निषेध है। जो अज्ञानी कुदेव तथा राग को, हिंसा को धर्म मानता है या ऐसा मनवानेवाले कुगुरु-कुशास्त्र उनका आश्रय करता है तो महा मिथ्यात्वरूपी पाप का पोषण करता है, उसको तो व्यवहार में भी नहीं गिना जाता। यहाँ तो जिनभगवान के कहे हुए व्यवहार की बात है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु जो कि आत्मा का सत्य स्वरूप बतलानेवाले हैं, उनकी ओर जानेवाला जितना रागादि पराश्रयभाव, वह भी मोक्ष का साधन होता नहीं, वह केवल पुण्यबंध का कारण है।—वह मिथ्यात्व नहीं, उसीप्रकार मोक्ष का कारण भी नहीं; वह पुण्य का अर्थात् संसार का कारण है। पराश्रित रागभाव को अगर मोक्ष का सच्चा कारण माना जाये तो मिथ्यात्व होता है। सम्यक्त्व की भूमिका में ऐसा शुभराग होता है, उसको मोक्ष का वास्तविक साधन सम्यक्त्वी नहीं मानता। शुद्धात्मा के आश्रय से जो

वीतरागभावरूप श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है, वह मोक्ष का साधन है।

* हेयबुद्धि सहित, पर के आश्रयरूप व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र भले हो, किंतु शुद्धात्मा के अनुभवरूप निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र न हो, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं; यदि निश्चय-श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धात्मा का सद्भाव हो, तभी मोक्षमार्ग है।

* जहाँ शुद्धात्मा के आश्रयरूप मोक्षमार्ग है, वह नवतत्त्व इत्यादि के विकल्परूप व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र न हों तो भी मोक्षमार्ग स्थिर रह सकता है, क्योंकि मोक्षमार्ग शुद्धात्मा के ही आश्रय से है, व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं। अर्थात् शुद्ध आत्मा के आश्रयरूप मोक्षमार्ग यह एक ही मोक्षमार्ग है। अन्य दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है।

* इसप्रकार शुद्धात्मा का ही आश्रय करनेवाला शुद्धनय उपादेय है—क्योंकि वह मोक्ष का कारण है; पर के आश्रयरूप अशुद्धनय, वह छोड़नेयोग्य है, क्योंकि वह संसार का कारण है।—ऐसा जैन सिद्धांत समझकर हे जीवो! तुम शुद्धात्मा के सन्मुख होकर मोक्षमार्गरूप परिणमन करो।

* * *

सर्व पराश्रित व्यवहार का निषेध

प्रश्न—अज्ञानी का व्यवहार तो भले ही मोक्ष का कारण नहीं होता, किंतु ज्ञानी का व्यवहार तो मोक्ष का कारण है न?

उत्तर—नहीं; व्यवहार अर्थात् पराश्रित भाव; जितना पराश्रय भाव है, वह सभी बंध का कारण है—फिर ज्ञानी का हो चाहे अज्ञानी का हो, किंतु कोई भी पराश्रयभाव मोक्ष का कारण नहीं हो सकता।

जहाँ शुद्धात्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चय मोक्षमार्ग है, वहाँ भी नवतत्त्व की श्रद्धा का विकल्प, शास्त्र की ओर का ज्ञान, छह काय जीवों की रक्षा का शुभराग—ऐसे जो व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप पराश्रित भाव होते हैं, वह बंध के ही कारण हैं; उनके आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं, मोक्षमार्ग तो शुद्धात्मा के ही आश्रय से है। इसलिये शुद्धात्मा का ही आश्रय

करानेवाला निश्चयनय ही मुमुक्षु के लिये आदरणीय है, तथा पराश्रयरूप व्यवहार बंध का कारण होने से निषेध करनेयोग्य है।

निर्विकल्प अनुभवरूपी चैतन्यगिरि की गुफा में जाकर निश्चयरूप शुद्धात्मा का ध्यान करने से समस्त पराश्रयरूप व्यवहार का त्याग हो जाता है। इसप्रकार निश्चय का आश्रय किया, वहाँ व्यवहार का आश्रय नहीं रहा, अर्थात् निश्चय के द्वारा व्यवहार का निषेध हो जाता है। 'यह व्यवहार है, इसका निषेध करता हूँ'—ऐसा व्यवहार के समक्ष देखकर उसका निषेध नहीं हो सकता। कब होता है? व्यवहार से विमुख अर्थात् पर का आश्रय छोड़कर जहाँ शुद्धस्वभाव के सन्मुख होकर निश्चय का आश्रय किया, वहाँ पर के साथ एकताबुद्धि का त्याग होकर समस्त पराश्रयरूप व्यवहार का भी त्याग हो जाता है। इसप्रकार निश्चय के आश्रय में पराश्रित व्यवहार का त्याग जानना।

प्रश्न—क्या कोई व्यवहार, मोक्ष का कारण हो सकता है?

उत्तर—हाँ; एक व्यवहार ऐसा भी है कि जो मोक्ष का कारण है। कौनसा व्यवहार? 'आत्मा के स्वभाव की एकाग्रतारूप भावना, वह आत्मस्वभावरूप होती है, तथा वही आत्मव्यवहार है, वह व्यवहार ही आत्मा को मुक्ति का कारण है; दूसरा व्यवहार मुक्ति का कारण नहीं है।'

—इस व्यवहार को मोक्ष का कारण कहा, यह निश्चय से मोक्ष का कारण है अर्थात् यह सच्चा मोक्ष का कारण है। इसके अतिरिक्त पराश्रितरूप अन्य कोई भी व्यवहार, वह मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष के कारणरूप ऐसा व्यवहार भी शुद्ध निश्चय स्वभाव के आश्रय से ही प्रगट होता है; इसलिये इस निश्चय स्वभाव का ही आश्रय करना योग्य है।

जयवंत रहो वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग!

[शास्त्रों का हृदय परम वीतरागता में समाता है]

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए जो वीतरागी शास्त्र, उन सभी शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागभाव है; वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है; शास्त्रों का समस्त हृदय परम वीतरागता में ही विद्यमान है, अर्थात् राग से भिन्न होकर ज्ञान-अनुभूति के द्वारा ही शास्त्रों के हृदय की पहिचान की जा सकती है। ऐसा वीतरागीपन ही मोक्षमार्ग में प्रमुख है; इसलिये मुमुक्षु को सर्वथा वीतरागभाव ही कर्तव्य है, राग किंचित् भी कर्तव्य नहीं है—

इससे न करना राग किंचित्, कहीं भी मोक्षेच्छु को;
वीतराग होकर इस तरह, वह भव्य भवसागर तिरे॥१७२॥

अहो, यह वीतरागपना जयवंत वर्तो, जो कि साक्षात् मोक्षमार्ग का सार है। वीतरागता किसप्रकार हो? कि अपने सर्वज्ञस्वभाव के सन्मुख होकर उसमें एकाग्र होने से राग की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये साक्षात् मोक्षमार्गरूप वीतरागता प्राप्त होती है। इसप्रकार भव्य जीव वीतराग होकर भवसागर से पार हो जाते हैं; इसलिये मोक्षाभिलाषी जीव कहीं भी किंचित् भी राग मत करो। अरिहंतों के प्रति राग भी मोक्ष में बाधक है, इसलिये उस राग को भी मुमुक्षु आदरणीय नहीं मानता। इससे पार ऐसा जो पूर्ण ज्ञानस्वभाव, शुद्ध आनंद अमृत से भरा समुद्र, उसमें डुबकी लगाकर मुमुक्षु वीतरागता के द्वारा भवसागर से पार हो जाता है। अहो, ऐसा वीतरागी मार्ग जयवंत वर्तो!

वीतरागरूपी अमृत से भरा हुआ समुद्र, उसमें से बाहर निकलकर अरिहंतादि परम उपकारी पुरुषों के प्रति शुभराग, वह भी चंदनवृक्ष की अग्नि के समान दाह उत्पन्न करनेवाला है। राग कहीं शांति प्रदान करता नहीं, राग तो आकुलतारूपी दाह को ही उत्पन्न करता है। वीतरागी परमात्मा जैसा अपना स्वभाव, उसे छोड़कर बाह्य में अन्य वीतराग पुरुषों के प्रति राग, वह भी मोक्ष के लिये हितकारी नहीं; उसका भी त्याग करके जब जीव वीतराग होता है, तब ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

शुभराग के पुण्य द्वारा भले ही इंद्रपद की संपदा प्राप्त हो जाये, किंतु उसके आलंबन से तो जीव को राग की जलन ही होगी। स्वद्रव्य के आश्रय का त्याग करके किंचित् भी परद्रव्य का आश्रय हो तो उसमें राग की जलन ही है। अरे, जहाँ आत्मा के अतिरिक्त अन्य वीतरागी पंच परमेष्ठी भगवंतों के आश्रय का बाह्य झुकाव, उसमें भी राग तथा जलन है, तो इंद्र की विभूति इत्यादि पाँच इंद्रियों के विषयों के प्रति राग की जलन का तो क्या कहना ? भाई ! तेरे आत्मा का जो शुद्ध पूर्णानंदी स्वरूप है, उस ही में तेरी परम शांति है, उस ही में तेरा मोक्षमार्ग है। इससे बाहर कहीं भी किंचित् भी शांति अथवा हित नहीं है।

राग में जिसकी जलन मालूम नहीं हो, किंतु उसमें हित मालूम हो, उसको वीतरागी मोक्षमार्ग की खबर नहीं, चैतन्य की शांति की उसको खबर नहीं; वह राग का त्याग करके वीतराग मार्ग की कहाँ से साधना करेगा ? आचार्य भगवान स्पष्ट कहते हैं कि हे मोक्षार्थी जीव ! किसी भी राग में तू रुकना मत, चिदानंदस्वभाव के सन्मुख होकर, सर्वत्र किंचित् भी राग का त्याग करके वीतरागभाव के द्वारा ही तुम भवसागर से तिरोगे। इसलिये यही कर्तव्य है; यही शास्त्रों का परम हृदय है। मोक्षार्थी को ऐसे वीतरागभाव के अतिरिक्त अन्य किसी का भी तात्पर्य नहीं है। राग की अनुभूति से सर्वथा भिन्न ऐसी जो ज्ञानानुभूति, वह तात्विक आनंद से भरी हुई है, ऐसी ज्ञान-अनुभूति के द्वारा शीघ्र परम आनंदमय मोक्षदशा प्रगट होती है।—इसप्रकार महाजन पुरुष वीतरागभाव के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

राग में धर्म मानकर जो रुक गये हैं, वह महाजन नहीं हैं किंतु वह तुच्छ जन हैं। महाजन महापुरुष तो वास्तव में वही हैं कि जो राग का सर्वथा त्याग करके वीतरागभाव के द्वारा मोक्ष की साधना करता है। राग में बड़प्पन नहीं, बड़प्पन तो वीतरागभाव में है। वीतरागभाव को जो धारण करता है, वही सच्चा महाजन है। ऐसे महाजन भगवंत अपुनर्भव ऐसे मोक्ष के लिये नित्य उद्यमी हैं। वे चेतना के द्वारा शुद्ध-चैतन्यस्वरूप में स्थिर होते जाते हैं, अर्थात् राग का त्याग करके वीतराग होते जाते हैं; और अत्यंत स्थिर ज्ञान-अनुभूति के द्वारा तात्त्विक आनंद से भरपूर मोक्ष की साधना करते हैं। इसप्रकार वीतरागभाव के द्वारा ही भवसागर से तिरा जा सकता है। इसलिये ऐसा वीतरागभावरूप साक्षात् मोक्षमार्ग जयवंत वर्तो !

[पंचास्तिकाय, गाथा १७२]

ज्ञाता को जाने बिना कल्याण किसका ?

ज्ञान के द्वारा आत्मा स्वयं अपने को जाने, वह कल्याण का उपाय है। ज्ञान को अंतर्मुख करके आत्मा स्वयं अपने को जाने तो आनंद का अनुभव होता है। अरिहंत भगवान सर्वज्ञ परमात्मा हुए, वह कहाँ से हुए ? आत्मा में केवलज्ञान की शक्ति थी, उसका भान करके उसमें से सर्वज्ञता तथा पूर्ण आनंद प्रगट किया; बाहर से सर्वज्ञता नहीं आयी। प्रत्येक आत्मा में स्वयं अपनी सर्वज्ञशक्ति है; सर्वज्ञशक्तिवाला अपने को जानने से रागादि परभावों में आत्मबुद्धि नहीं रहती; स्वयं अपने को सर्वज्ञस्वभावी जाने बिना रागबुद्धि का त्याग नहीं होता, और कल्याण भी नहीं होता।

जिसप्रकार श्रीफल में मीठा गोला लाल छाल से भिन्न है, काचली से भिन्न, ऊपर के जटा से भिन्न है; उसीप्रकार आनंद से भरा हुआ शुद्ध चैतन्यतत्त्व रागादि भावों से भिन्न, आठकर्मरूपी काचली से भिन्न, तथा छिलके के समान शरीर से भी भिन्न है—ऐसा चैतन्यपद, वही आत्मा का सच्चा निजपद है। ऐसा निजपद बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि अरे जीवो ! मोह में क्यों सोये हुए हो ? परपद को निजपद समझकर तुम मोही क्यों हो गये हो ? यह पद तुम्हारा नहीं है, तुम्हारा पद तो चैतन्यस्वरूप है; उसको तुम पहिचानो, निजपद को जानने से ही कल्याण होगा। निजपद को पहिचाने बिना अन्य अनंत प्रकार के उपाय से भी कल्याण होनेवाला नहीं। अरे, ऐसा मानव-भव प्राप्त हुआ, इसमें आत्मा के हित का जो विचार करना चाहिये। आत्मा क्या वस्तु है तथा उसका सच्चा स्वरूप क्या है, उसकी पहिचान करना चाहिये।

प्रभु ! तू तेरे आत्मा को भूल जाने से बाह्य में सुख खोजने से क्षण-क्षण तेरा भावमरण हो रहा है। हीरों का, रत्नों का, बाह्य पदार्थों का मूल्यांकन तू करता है, परंतु सबका मूल्यांकन करनेवाला आत्मा स्वयं कितना मूल्यवान है ! कितने अनंत गुण उसमें हैं ? इसकी खबर नहीं; जाननेवाला स्वयं अपने को नहीं जानता—ऐसा ज्ञान कैसा ? भाई ! तू तो अविनाशी पूर्ण आनंद का धाम है। अंतर में अपने आत्मा को पहिचाने तो तेरा आनंद तुझे प्रगट अनुभव में

आवे। जाननेवाले को जाने बिना कल्याण किसका ? जाननेवाला स्वयं अपने को जाने वही कल्याण है।

एक बार अंतर्मुख होकर आत्मा स्वयं अपने को जाने तो परभावों से भिन्नता का ऐसा भेदज्ञान हो कि फिर कभी भी एकताबुद्धि उत्पन्न ही न हो। जिसप्रकार पर्वत के ऊपर बिजली गिरने से पर्वत फट जाता है, दो भाग हो जाते हैं, वह कभी भी जुड़ते नहीं। इसीप्रकार भेदज्ञानरूपी बिजली गिरी, वहाँ ज्ञान तथा राग की एकता ऐसी भिन्न हो गई कि राग का अंश भी ज्ञानरूप भासित नहीं होता। ऐसा— भेदज्ञान करनेवाला जीव संसार का नाश करके अल्पकाल में मुक्ति को प्राप्त हो जायेगा।

सुख का उपाय

भाई, तुझे सुखी होना हो तो अपने ज्ञान में परमात्मा की स्थापना कर, बाह्य विषयों को स्थान न दे। आनंद तो तेरा स्वरूप है, उसमें विषयों की आवश्यकता कहाँ है ? इसलिये तो कहते हैं कि हे जीव! सुख अंतर में है, उसे बाह्य में न ढूँढ़। जगत को संतुष्ट करने में और जगत से संतुष्ट होने में तो जीव ने अनंत काल गँवा दिया, परंतु उसमें किंचित् सुख नहीं है... अंतर्मुख रुचि द्वारा अपने आत्मा को संतुष्ट कर और आत्मा के स्वभाव से तू संतुष्ट हो, तो तुझे सच्चे सुख का अनुभव होगा। संयोग द्वारा संतुष्ट न हो, राग द्वारा संतुष्ट न हो, आनंद का भंडार तुझमें भरा है, उसमें तू संतुष्ट हो, प्रसन्न हो, आनंदित हो।

जिसने चैतन्य का सुख देख लिया, वह धर्मात्मा जगत के किसी विषय में लुभाता नहीं है। चैतन्य में भरा हुआ अनंत सुख का भंडार धर्मी को ऐसा रुचिकर है कि वह उसी के स्वाद में तल्लीन हो जाता है। अनंत सुख के धाम में जो लुभाया वह किन्हीं सांसारिक विषयों के लालच में नहीं फँसता। सांसारिक पदार्थों की लालसा उसे छूट गई और चैतन्यानंद के अनुभव की उत्कृष्ट लालसा (प्रीति) जागृत हुई; उसमें तल्लीन—एकाग्र होकर अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है।

भगवान पारसनाथ

[१]

दो भाई—मरुभूति और कमठ

प्रिय पाठको, आज मैं अपने तेईसवें तीर्थंकर पारसनाथ, भगवान की जीवन-कथा कहता हूँ। उन्होंने कैसी क्षमा धारण की तथा हाथी के भव में आत्मा को पहिचानकर किसप्रकार भगवान हुए, इसका वर्णन श्रवण करके तुमको आनंद होगा, तथा तुमको भी वैसा करने की रुचि उत्पन्न होगी।

इस जम्बूद्वीप के मध्य महान मेरु पर्वत है; उसकी दक्षिण दिशा में भरतक्षेत्र है। अनेक वर्षों पहले वहाँ पोदनपुर में एक राजा राज्य करता था, जिसका नाम अरविंद था।

इस राजा के मंत्री को दो पुत्र थे—एक का नाम कमठ, दूसरे का नाम मरुभूति। कमठ ज्येष्ठ तथा मरुभूति लघु था। मरुभूति, वही अपने पारसनाथ का जीव है।

कमठ तथा मरुभूति दोनों सगे भाई थे, फिर भी कमठ क्रोधी तथा दुराचारी था, मरुभूति शांत तथा सरल था। जिसप्रकार एक ही प्रकार के लोहे में से तलवार भी बनती है और बख्तर भी बनता है। तलवार काटती है और बख्तर रक्षा करता है; उसीप्रकार एक ही माता के दो पुत्र—एक कुपुत्र तथा दूसरा सुपुत्र है। क्रोधी कमठ हमेशा दोषों को देखता है किंतु मरुभूति विनय से सद्गुणों को देखता है। प्रिय पाठकों! आगे चलकर आपको पता चलेगा कि क्रोधी जीव का अहित होता है तथा सद्गुणों से जीव कितना सुखी होता है।

मंत्री के दोनों पुत्र साथ में खेलते हैं, साथ में पढ़ते हैं; ऐसा करते हुए दोनों पुत्र युवावस्था को प्राप्त हुए, दोनों के विवाह हो गये। वे जाति के ब्राह्मण थे, अभी इनको जैनधर्म के संस्कार प्राप्त नहीं हुए थे। इसलिये आत्मा की पहिचान भी नहीं हुई थी।

एक बार सिर में सफेद बाल देखकर मंत्री ने राजा से कहा कि अब मेरी वृद्धावस्था आ रही है। अतः मुझे आत्मा का हित करना है; अब मैं अपने मंत्री पद से निवृत्त होता हूँ; यह कहकर मंत्री ने अपने मंत्रीपद का त्याग करके एक मुनि के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। राजा ने उसके लघु पुत्र मरुभूति को मंत्री बनाया। कमठ अपने दुष्ट स्वभाव के कारण मंत्रीपद से वंचित

रहा। छोटे भाई मरुभूति को मंत्रीपद मिला और मैं बड़ा हूँ किंतु मुझे मंत्रीपद नहीं दिया गया। इसलिये कमठ को मरुभूति से ईर्ष्या होने लगी।

एक समय राजा अरविंद दूसरे राजा के साथ लड़ने गया, साथ में मंत्री मरुभूति को भी ले गया। राजा तथा मंत्री दोनों चले जाने से दुष्ट कमठ स्वयं राजा हो, इसप्रकार वर्तन करने लगा, प्रजा को कष्ट देने लगा। मरुभूति की पत्नी अति सुंदर थी, उसे देखकर कमठ मोहित हो गया। अरे रे, अपने लघु भ्राता की पत्नी तो पुत्री के समान होती है, किंतु फिर भी विषयांध जीव उस पर खराब दृष्टि रखने लगा। धिक्कार है ऐसे विषयों को! इसलिये शास्त्र कहते हैं कि हे जीव! विष जैसे विषयों को तो तू दूर से ही त्याग कर।

मरुभूति की अति सुंदर पत्नी के ऊपर मोहित कमठ ने अपने मन की बात अपने मित्र से कही; उसके मित्र ने ऐसा दुराचार करने के लिये रोका तथा समझाया; ऐसे पापकर्मों से जीव नरक में जाता है, यहाँ पर भी उसकी निंदा होती है, इसलिये हे मित्र! तू तेरी शिक्षा को मानकर ऐसे दुष्ट विचार का त्याग कर दे। किंतु पापी कमठ ने अपने मित्र की एक भी शिक्षा नहीं मानी; और कहने लगा कि यदि यह सुंदरी मुझे प्राप्त न हुई तो मैं मर जाऊँगा।

अंत में मरुभूति की सुंदर पत्नी को कपटपूर्वक एक बाग में बुलाकर दुष्ट कमठ ने उसके साथ दुराचार किया। राजा भी वहाँ नहीं था, अत: शिकायत भी किसके पास करना?

अनेक दिवस व्यतीत होने के बाद, लड़ाई का कार्य मरुभूति को सौंपकर अरविंद राजा ने पोदनपुर आकर राज्यभार ग्रहण किया। प्रजा से कमठ के दुराचार की बात राजा ने सुनी, इससे राजा को कमठ के ऊपर अति क्रोध उत्पन्न हुआ; ऐसे अन्यायी दुष्ट व्यक्ति की मेरे राज्य में कोई आवश्यकता नहीं, इससे मेरा राज्य कलंकित होता है, ऐसा विचार करके कमठ को कठोर दंड देकर, काला मुँह करके, गधे पर बैठाकर नगर के बाहर निकाल दिया। पापी कमठ के यह हाल देखकर नगरवासी यह कहने लगे कि देखो, पापी जीव अपने पाप का फल भोग रहा है; इसलिये पाप से दूर रहना चाहिये।

कमठ को नगर से निष्कासित होने का अति दु:ख हुआ। वह तापस लोगों के मठ में जाकर बाबा बनकर कुगुरुओं की सेवा करने लगा। वहाँ पर किसी की लम्बी जटा थी, किसी के शरीर पर राख लगी हुई थी, कोई मृगचर्म के ऊपर बैठा था, तो कोई पंचाग्नितप करता था;

कमठ ऐसे कुगुरुओं की सेवा करने लगा। उसको कुछ ज्ञान तो था नहीं, वैराग्य भी नहीं था। अज्ञान तथा क्रोध से हाथ में एक बड़ा पत्थर उठाकर खड़ा-खड़ा तप करने लगा। इसके बाद क्या हुआ ?..... इसको जानने से पहिले अपन इसके भाई मरुभूति की खोज कर लें।

युद्ध में गया हुआ मरुभूति जब वापस आया, तब अपने बड़े भाई कमठ के दुराचार की बात मालूम हुई। राजा ने कमठ को नगर से बाहर निकाल दिया, यह जानकर अत्यंत दु:खी हुआ। भाई के ऊपर मरुभूति ने क्रोध नहीं किया किंतु इससे विपरीत कमठ से मिलने की तथा घर वापस लाने की इच्छा हुई। मरुभूति राजा के समीप जाकर निवेदन करने लगा कि महाराज! मेरे भाई का अपराध क्षमा करो तथा उसको राज्य में वापस लाने की मुझे अनुमति प्रदान करो।

राजा ने कहा— भाई! तू अति सज्जन है किंतु कमठ दुष्ठ है; एक ही घर में अमृत तथा विष का संयोग हो गया है। कमठ तेरा भाई है किंतु उसने जो खराब तथा अन्यायी कार्य किया, उसका दंड देना ही चाहिये था, इसी में राज्य की शोभा है, इसलिये तू चिंता मत कर और घर जा।

घर आकर भी मरुभूति को अपने भाई के बिना चैन नहीं पड़ा; इसलिये वह अपने भाई से मिलने के लिये जाने लगा। राजा ने भी उसके पास नहीं जाने के लिये खूब समझाया किंतु मरुभूति नहीं माना। बड़े भाई के मोह के वशीभूत होकर उसकी खोज करने लगा; और उससे क्षमा माँगने के लिय मरुभूति चला। रे..... बंधुप्रेम का मोह कैसा! जीवों को मोह का बंधन तोड़ना कठिन लगता है।

मरुभूति अपने भाई को ढूँढ़ता हुआ जहाँ कमठ रहता था, वहाँ आ पहुँचा। अपने भाई को बाबा के वेश में ऐसा झूठा तप करते हुए देख उसे अत्यंत दु:ख हुआ। कमठ के समीप जाकर मरुभूति हाथ जोड़कर निवेदन करने लगा कि भाई! तुम्हारे बिना मुझे अच्छा नहीं लगता। मैंने राजा से खूब निवेदन किया किंतु उन्होंने क्षमा प्रदान नहीं की। अब जो हुआ, वह हो गया; अब इस झूठे वेष का त्याग कर दो; ऐसे कुगुरुओं के साथ रहने में, ऐसे झूठे तप करने में जीव का किंचित् भी भला होनेवाला नहीं, इसलिये इसका त्याग कर दो। आप मेरे साथ चलो, आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता हो, मेरे प्रति क्रोध न करके मुझे क्षमा करो—इसप्रकार कहकर मरुभूति ने अपने ज्येष्ठ बंधु कमठ को वंदन किया।

परंतु वह तो क्रोधी कमठ था! वह अपने स्वभाव का किसप्रकार त्याग कर सकता है? सज्जन अपने सरल स्वभाव का त्याग करते नहीं तथा दुर्जन अपने दुष्ट स्वभाव का त्याग करते नहीं। जिसप्रकार कुल्हाड़ी से काटने पर भी चंदन तो सुगंध ही प्रदान करता है, उसीप्रकार दुष्टजनों के द्वारा दु:ख देने पर भी सज्जन अपनी शांति का त्याग नहीं करते। देखो, कमठ ने कितना खराब कार्य किया, फिर भी मरुभूति ने अपना प्रेम तथा विनय नहीं छोड़ा; प्रेम से उसके पास क्षमा माँगी।

—किंतु दुष्ट कमठ का क्रोध तो उल्टा बढ़ गया। मेरा ऐसा अपमान मरुभूति के ही कारण से हुआ है, तथा यहाँ भी यह मुझे कष्ट देने के लिये आ गया है। मेरा पाप यहाँ सभी के बीच में कह देगा।—ऐसा विचार करके क्रोधित होकर कमठ ने जो अपने हाथ में तप करने के लिये पत्थर उठा रखा था; वही पत्थर मरुभूति के सिर पर जोर से पटक दिया। पत्थर के पड़ते ही मरुभूति का सिर फट गया, सिर में से खून की धाराएँ बहने लगीं और थोड़ी दूर में मरुभूति की मृत्यु हो गई। अरे रे, क्रोध के कारण सगे भाई के हाथ सगे भाई की मृत्यु हुई—रे संसार! जिसप्रकार सर्प के पास से कभी अमृत प्राप्त नहीं होता; इसीप्रकार क्रोध में से कभी सुख प्राप्त होनेवाला नहीं। क्षमारूप जीव का स्वभाव है, उसके सेवन से ही सुख प्राप्त होता है।

पत्थर के द्वारा जब मरुभूति की मृत्यु हुई, तब उसको आर्तध्यान हो गया; अभी आत्मा का ध्यान तो उसको था नहीं। इसलिये आर्तध्यान के खराब भावों से मरकर वह तिर्यंचगति में सम्मेदशिखर के समीप वन में एक बड़ा हाथी हुआ।

[प्रिय पाठकों! हाथी हुए इस पारसनाथ भगवान के जीव को, उस हाथी के भव में ही आत्मज्ञान प्राप्त होगा। इसकी सुंदर कथा अगले अंक में आप पढ़ सकेंगे। किंतु इसके पहले, कमठ तथा राजा अरविंद का क्या हुआ, यह जान लें।]

कमठ ने पत्थर के द्वारा अपने भाई को कुचलकर मार डाला—यह बात जब आश्रम के तापसों ने सुनी, तब कमठ को उन्होंने पापी समझकर आश्रम से बाहर निकाल दिया। पापी कमठ चोरों के साथ रहने लगा और चोरी करने लगा। चोरी करते हुए पकड़ा गया, तब उसे खूब पीटा गया, इससे वह अत्यंत दु:खी हुआ, किंतु उसने अपने भावों को सुधारा नहीं; अंत में क्रोध से मरकर वह कुक्कट नाम का भयंकर जहरीला सर्प हुआ।

मरुभूति तो मरकर हाथी हो गया है, किंतु इस ओर राजा अरविंद को उसकी कोई खबर नहीं। वह तो चिंता करता है कि मरुभूति अब तक वापस क्यों नहीं आया ? इतने में वहाँ एक अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे, उनका उपदेश श्रवण करके राजा अत्यंत आनंदित हुआ। मुनिराज से राजा ने पूछा कि मेरा मंत्री मरुभूति कहाँ है ? वह वापस क्यों नहीं आया ?

तब मुनिराज ने कहा कि हे राजन्! मरुभूति तो अपने भाई कमठ के हाथ से मारा गया है.... दु:ख से कुमरण करके हाथी हुआ है।

यह सुनते ही राजा को अत्यंत दु:ख हुआ, यह विचार करने लगा कि अरे, यह संसार कैसा है ! दुष्ट का संग करने से मरुभूति दु:खी हुआ।

मुनिराज ने वैराग्य से समझाया कि हे राजा! इस संसार के जन्म-मरण को कोई भी मिथ्या नहीं कर सकता। आत्मा का ज्ञान जहाँ तक नहीं करे, वहाँ तक जीव को ऐसे जन्म-मरण करना ही पड़ते हैं। अपने हित के लिये जीव को दुष्ट पुरुषों का संग त्याग करके ज्ञानी धर्मात्माओं का संग करना चाहिये।

राजा उदास होकर खिन्न मन से घर पर आया; एकबार राजमहल की अट्टालिका के ऊपर राजा बैठा था, उस समय मुनिराज के उपदेश को बारंबार याद करके वैराग्य-चिंतवन करता था। इतने में एक घटना हुई। आकाश में सुंदर रंग-बिरंगे बादल एकत्रित होने लगे, थोड़ी देर में एक अत्यंत सुंदर जिनमंदिर हो, ऐसा दृश्य निर्मित हो गया। ऐसे अद्‌भुत दृश्य को देखकर राजा विचार करने लगा कि अहा, आकाश में ऐसा रमणीय जिनमंदिर ! उसको देखकर राजा ने विचार किया कि मैं भी अपने राज्य में ऐसे जिनमंदिर का निर्माण कराऊँगा। ऐसा विचार करके उस मंदिरी का चित्र लेने के लिये तैयार हुआ, किंतु राजा ने अभी कलम हाथ में ली ही थी कि वहाँ बादल सभी बिखर गये और अद्‌भुत मंदिर की रचना लुप्त हो गई।

राजा तो यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया... अरे ! ऐसा अस्थिर संसार ! संयोग ऐसे क्षणभंगुर ! यह राजपाट-रानी-शरीर यह सभी संयोग बादल के समान क्षणिक और विनाशीक हैं। अरे, ऐसे अस्थिर इन्द्रिय-विषयों में दिन-रात तन्मय रहना-यह जीव को शोभा नहीं देता। यह शरीर क्षणभंगुर है, भोग दु:ख के ही देनेवाले हैं। जिसको अपना हित करना हो, उसे ऐसे भोगों के मोह में जीवन व्यतीत करना ठीक नहीं है। जिसप्रकार यह बादल एक

क्षण का भी विलंब किये बिना लोप हो गये, इसीप्रकार मैं भी अब तो एक क्षण का भी विलंब किये बिना इस संसार का त्याग करके मुनि होकर आत्मध्यान के द्वारा कर्मों के बादलों को अदृश्य कर दूँगा।

—इसप्रकार अत्यंत वैराग्यपूर्वक राजपाट का त्याग करके अरविंद राजा वन में चले गये और दिगम्बर गुरु के समीप दीक्षा लेकर मुनि हो गये। वह अरविंद मुनिराज आत्मा की साधना करते हुए देश-देशांतर विचरण करके अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए जीवों को प्रतिबोध देते हैं। धन्य मुनिराज!

(अगले अंक में हाथी को सम्यग्दर्शन होने के अद्‌भुत-आनंदकारी प्रसंग का वर्णन अवश्य पढ़ें।)

चेतकस्वभावी आत्मा

रागादि भावों को जाननेवाला आत्मा अपने को चेतकस्वभावरूप प्रसिद्ध करता है, रागादिरूप प्रसिद्ध नहीं करता। रागादिक को परज्ञेयरूप जानता हुआ वह आत्मा, 'मैं चेतकस्वभाव हूँ' ऐसा स्वयं का अनुभव करता है; किंतु मैं रागादि हूँ, ऐसा अनुभव नहीं करता।

स्वज्ञेयरूप ऐसे ज्ञान की अनुभूति, वह सम्यग्दर्शनादि है। ऐसा सम्यक्त्वादि आत्मलाभ रागरहित ही है। त्रैकालिक ज्ञायकस्वभाव में रागादि दोषों का अत्यंत अभाव है। पूर्ण वीतरागतत्त्व की श्रद्धा सहित राग के अभाव में ही चेतक का जीवन है। इसप्रकार चेतना तथा राग की अत्यंत भिन्नता है।

ऐसा भेदज्ञान करके आत्मा का अनुभव करनेवाली चेतना, वह मोक्ष का साधन है। आत्मा से वह अभिन्न है, भिन्न नहीं।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही सच्चा गृहप्रवेश है

[वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन 'कहाननगर हाउसिंग सोसायटी' के उद्घाटन पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

(समयसार, गाथा २७२)

चैतन्य में निवास करके वीतरागभाव प्रगट करना, वह अपूर्व वास्तु-प्रवेश है। सम्यग्दर्शन अलौकिक वस्तु है; लोगों को उसकी महिमा का पता नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ उसके घर में (आत्मा में) परमात्मा ने आकर निवास किया, वह सच्चा गृहप्रवेश है।

आत्मा का जो शुद्धस्वभाव पर के मिश्रण से रहित है, वह निश्चय है। पराश्रितभाव, वह व्यवहार है। मोक्ष की साधना करने के लिये मुमुक्षु को उस व्यवहार के आश्रय का त्याग करके निश्चय का आश्रय करना चाहिये।

शुद्धनय स्वयं पर्याय है, किंतु वह अंतर में निश्चयस्वभाव का आश्रय करता है, इसलिये शुद्धात्मशैली में शुद्धनय तथा उसका विषय शुद्ध आत्मा—यह दोनों अभेद हैं। ऐसी अभेददृष्टि, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बहुत दुर्लभ वस्तु है। जिसप्रकार जवाहरात की दुकान तथा ग्राहक हर समय थोड़े ही होते हैं; उसीप्रकार जगत में सम्यग्दृष्टि जीव थोड़े ही होते हैं, अधिकता तो व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि जीवों की ही है। सम्यग्दृष्टि जीव भले ही थोड़े हों किंतु जिसको आत्मा का कल्याण करना हो तथा इस संसार के अनंत दुःखों से छूटना हो, उसको आत्मा का भान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही सबसे प्रथम कर्तव्य है। इस सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का उपाय आचार्यदेव यहाँ बतलाते हैं।

शुद्धनय का विषय शुद्ध अभेद आत्मा है। नय वह अंश है; किंतु यह अंश तथा यह ध्रुव—ऐसा भेद अध्यात्मदृष्टि में नहीं होता; अध्यात्मदृष्टि में अभेद आत्मा एक ही है। उसमें

गुणगुणी-भेद नहीं, तब फिर राग की या जड़ की क्रिया की बात तो कहीं रह गई! पर से भिन्न, रागादि से भिन्न, ऐसे शुद्धात्मा का आश्रय, वह निश्चय है; तथा ऐसी निश्चयदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि है।

वस्तु अबंध, उसके गुण अबंध; तथा उसके सन्मुख जो परिणति झुकी, वह भी अबंध; बीच में जो रागादि बंधभाव शेष रहे, वह व्यवहार में गये, उनका आश्रय धर्मी को नहीं, धर्मी उनमें एकता मानता नहीं। सम्यग्दर्शन होते ही आत्मा में से आवाज आती है कि अब अल्पकाल में ही सिद्धदशा प्राप्त होगी। स्वानुभव प्रारंभ होकर अल्पकाल में पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो जायेगी—ऐसी आवाज जिसको नहीं आवे तथा शंका रहे, उसको सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। सम्यग्दर्शन अलौकिक वस्तु है, लोगों को उसके महिमा की खबर नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ उसके गृह में (आत्मा में) परमात्मा ने निवास कर लिया... यह परमार्थ गृहप्रवेश हुआ।

मोक्ष कौन प्राप्त करता है?

जिसने अपने शुद्ध आत्मा को पहिचानकर स्वद्रव्य का आश्रय किया, वही निश्चय से मोक्ष को प्राप्त करता है। जो ऐसे शुद्ध आत्मा का आश्रय नहीं करता, वह रागादि परभाव में अटकता है, वह कर्म से छूटता नहीं। व्यवहार के आश्रय द्वारा बंधन है; शुद्धनय के आश्रय द्वारा मोक्ष है—यह जैन सिद्धांत का नियम है।

अरे, अपने वस्तुस्वभाव को पहिचाने बिना जीव बाहर के क्रिया-कांड में अर्थात् जड़ क्रिया में, शुभराग में धर्म मानकर सच्चा मोक्षमार्ग भूल रहे हैं; ऐसे जीवों के ऊपर ज्ञानी को करुणा आती है; तथा कहते हैं कि हे भाई! तेरे चैतन्य के अनंतगुण की संपदा तेरे धाम में ही है। राग में अथवा देह की क्रिया में तेरे गुण की संपदा नहीं। अपनी चैतन्य-संपदा को तू सम्हाल। चैतन्य-संपदा को देखते ही तुझे आनंद तथा मोक्षमार्ग प्राप्त होगा।

देव-गुरु-शास्त्र, व्रतादि संबंधी जितने भी शुभभाव भगवान ने कहे हैं, वह सभी पराश्रित भाव हैं, उनको भगवान ने बंध का ही कारण कहा है, वह मोक्ष का वास्तविक कारण नहीं हैं। मोक्ष का निश्चयकारण तो स्वाश्रित ऐसा वीतरागभाव ही है। चैतन्य में निवास करके ऐसा वीतरागभाव प्रगट करने से ही निज चिदानंद-गृह में प्रवेश हो सकता है।

—तत्त्वचर्चा—

प्रश्न—मुनि होना या नहीं ?

उत्तर—अवश्य होना। मुनि हुए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये शुद्धोपयोगरूप मुनिपना अवश्य प्रगट करना। ऐसा मुनिपना प्रगट करने के लिये प्रथम भेदज्ञान द्वारा शुद्धात्मा को पहिचानकर अनुभव में लेना चाहिये। आत्मा के ज्ञान से रहित शुभराग को मुनिपना मान ले, वह कहीं मुनिपना नहीं, तथा उसमें आत्मा का हित भी नहीं है।

प्रश्न—आप तो मुनि को नहीं मानते ऐसी लोगों की मान्यता है ?

उत्तर—जिनको आत्मा का ज्ञान नहीं, आत्मा का अनुभव नहीं, शुभराग को ही मोक्ष का साधन मानते हैं तथा सच्चे वीतरागी तत्त्व का विरोध करते हैं, ऐसे कुगुरुओं को हम मुनि नहीं मानते; परन्तु जो सच्चे मुनि हैं, जो आत्मा के ज्ञानसहित शुद्धोपयोगी आनंददशा में झूलनेवाले हैं, जो रत्नत्रय के धारक हैं, ऐसे संत-दिगम्बर गुरुओं को हम मुनि मानकर पूजा करते हैं, उनके चरणों में हम परम भक्ति से नमस्कार करते हैं; और ऐसी मुनिदशा की भावना भाते हैं।

सुख से भरा हुआ स्वभाव

अखंड आत्मा को उसके त्रिकाली स्वरूप से देखो तो वह ज्ञायकभावरूप ही है। ज्ञाताभाव तथा सुख से पूर्ण आत्मा जहाँ प्रतीति में आया, वहाँ उसकी पर्याय के प्रवाह में भी केवलज्ञान तथा पूर्ण सुख ही आयेगा।

ऐसा ज्ञान तथा सुखस्वरूप आत्मा, वह दु:ख का वेदन करनेवाला नहीं। ज्ञानस्वभाव है, वह अमृतकुंभ है, रागादि परभाव विषरूप हैं—दु:खरूप हैं। जिसप्रकार एक वस्तु में दूसरी वस्तु नहीं, स्व में पर नहीं, उसीप्रकार सुखस्वरूप आत्मा में दु:ख का वेदन नहीं। आत्मा के सुखस्वभाव से दु:ख भाव भिन्न हैं।

ज्ञायकभाव, वह आत्मा है; ज्ञायकभाव भी शुभाशुभरागरूप हुआ नहीं है। जीव ने अज्ञान से नरकादि के दु:ख अनंत बार सहन किये, फिर भी ज्ञायकस्वभाव कहीं दु:ख के वेदनरूप नहीं हुआ। नरक में बाहर के संयोग की ओर से देखो तो एक मिनट भी शांति नहीं,

किंतु स्वभाव से देखो तो वहाँ त्रिकाल शांति का भंडार आत्मा में भरा है। उसकी दृष्टि करने से वहाँ भी सम्यक्त्व प्राप्त करके अपूर्व शांति का वेदन होता है, दु:ख तो औदायिकभाव है, पारिणामिकभाव में शांति का अखूट भंडार है, उसमें किंचित् भी दु:ख नहीं। ऐसे मेरे स्वभाव में सर्वज्ञता और पूर्णानंद है—ऐसा जहाँ स्वतत्त्व प्रतीति में लिया, वहाँ सर्वज्ञता का साधन प्रारंभ हो जाता है, अब अल्प काल में ही सर्वज्ञता प्रगट होगी, होगी और होगी। इसका नाम अमृत है। मोक्ष के मार्ग को अमृतमार्ग कहा; इसलिये संसार के कारणरूप रागादिभाव विष हैं।

स्वभाव की ओर से देखो तो आत्मा एकांतशुद्ध है, अशुद्धता उसमें नहीं; ऐसे एकांतशुद्ध स्वभावरूप से आत्मा का अनुभव, वह पूर्ण शुद्धात्मारूप मोक्ष का कारण है; शुभराग एकांत अशुद्ध है, उसका अनुभव मोक्ष का कारण नहीं।

भाई! ऐसी अपनी शुद्ध वस्तु की श्रद्धा कर... ऐसा ही मैं हूँ, इसप्रकार नि:शंक होकर आत्मा के अस्तित्व को लक्ष में लेना चाहिये। यह तो वीरमार्ग है, वीरों का यह मार्ग है... यह अचल है-अपरिवर्तित है। एक बार अंदर से स्वभाव का बल उत्पन्न कर... अपना विश्वास कर। तुझमें पामरता नहीं, तेरे में प्रभुता है; उस प्रभुता का विश्वास करके अंतर में अनुभव कर। 'नहीं हो सकता'—ऐसे भावों का त्याग कर दे। स्वयं के ही अस्तित्व की प्रतीति स्वयं को न हो, यह बात कैसी? तुझसे हो सकती है, ऐसी यह बात है। तेरे जैसे अनंत जीवों ने जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया, वह यही बात है... यह तुझसे हो सकती है। इसलिये अंदर पात्र होकर प्रयत्न करना चाहिये।

— यह ध्रुव द्रव्य तथा यह उसकी पर्याय, इसप्रकार शास्त्र द्वारा तो अनेक जानते हैं। शास्त्र को पढ़कर अज्ञानी भी इतना तो ज्ञान कर लेता है; किंतु पर्याय को अंतर में ले जाकर ध्रुव में फैलाकर प्रतीति तथा अनुभव करे, तब सच्चा कहा जाता है। तब सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान होता है—ऐसा गंभीर सूक्ष्म अंतर का वीतरागमार्ग है।

प्रश्न—सोनगढ़ में प्रवचन में समयसार का ही वांचन होता है, अन्य किसी शास्त्र का वांचन नहीं होता - यह सत्य है?

उत्तर—सोनगढ़ में समयसार-परमागम की मुख्यता रहती है, यह सत्य है, किंतु समयसार के अतिरिक्त षट्खंडागम (भाग-१) इत्यादि पचास उपरांत संख्या में वीतरागी शास्त्रों पर भी सोनगढ़ में प्रवचन में हो चुके हैं।●●

शुद्धात्मा की अनुभूति ही सुख का कारण है।

[मोरबी शहर में पूज्य स्वामीजी का भावपूर्ण प्रवचन]

आत्मा सदा आनंदस्वरूप है, उसके सन्मुख होने से जो आनंददशा प्रगट होती है, वह मंगल है। अनादि काल से निजस्वरूप को भूलकर संसार में भ्रमण करनेवाले जीव ने निजस्वरूप की शांति का स्वाद कभी लिया नहीं। अनुभव किया नहीं; जिससे शांति प्राप्त हो, वही सच्चा मंगल है; अन्य सभी जो लौकिक मंगल हैं, वह नाशवान हैं, सच्चे मंगल नहीं हैं।

धर्मी कहता है कि—हे नाथ! आप जैसा अपना स्वरूप हमने पहिचाना तथा उसकी लगन लगी; इस लगन का नाश अब कभी उतरनेवाला नहीं है।

आत्मा का स्वरूप भगवान ने समझाया, उसको लक्ष्य में लेने से उसकी लगन लगी, वह अब कभी किसी से छूटनेवाली नहीं है, लोकलाज से भयभीत होकर आत्मा की लगन छूटनेवाली नहीं है, दुनिया चाहे जिसप्रकार बोलती रहे किंतु आत्मा की जो रुचि, उसमें भंग पड़नेवाला नहीं। चैतन्य की महिमा के सामने सभी पदार्थ तुच्छ भासित होते हैं। चैतन्य की कीर्ति-चैतन्य की महिमा श्रवण करके उसकी अपूर्व रुचि का होना, वह मंगल है।

जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनंत।
समझाया वह पद नमूं श्री सद्गुरु भगवंत॥

देखो, इसमें क्या न्याय है? आत्मा का स्वरूप समझे बिना अनंत दुःख पाया, ऐसा कहा; किंतु पुण्य नहीं किया, इसलिये दुःख पाया, ऐसा नहीं कहा। आत्मा को समझे बिना पुण्य भी अनंत बार कर चुका फिर भी उसमें किंचित् भी सुख प्राप्त नहीं किया अर्थात् पुण्य का शुभराग वह कहीं धर्म नहीं है। धर्म पदार्थ पृथक् है।

अनंत बार नरक और स्वर्ग में गया; किंतु आत्मा के ज्ञान बिना दुःख पाया। स्वर्ग में कब जाता है? कि पुण्य करे तब। पुण्य करते हुए भी स्वरूप नहीं समझने से दुःख ही पाया। इसलिये शुभराग भी दुःख ही है। भगवान आत्मा कर्म से तथा राग से भिन्न वस्तु है, आनंदमूर्ति आत्मा के भान बिना बाह्य में जिनेन्द्रदेव के दर्शन-भक्ति तथा व्रतादि का राग अनंत बार किया

किंतु उसका फल क्या ? कि दु:ख। वह किसप्रकार दूर हो ? कि आत्मा को समझे तब। इसके अतिरिक्त शुभाशुभभावों के द्वारा आत्मा प्रसन्न होता नहीं, और दु:ख दूर होता नहीं।

रावण के अनेक प्रयत्नों के बाद भी सीतादेवी प्रसन्न नहीं हुई, तब कोई कहता है कि तू 'राम' का रूप धारण करे तो सीता प्रसन्न हो; किंतु रावण जब राम का रूप धारण करता है तो विकार की वासना रहती नहीं। इसीप्रकार चैतन्यराम जैसा आत्मा, उसकी शुद्ध परिणतिरूप सीता, वह रागवृत्तिरूपी रावण के द्वारा प्रसन्न नहीं होती। राग के सेवन द्वारा शुद्ध परिणति कभी प्रगट नहीं होती। अंतर में चैतन्यस्वभाव की ओर झुककर जब आतमराम का सच्चा रूप धारण किया, तब शुद्धपरिणतिरूप सीता प्रसन्न होती है, तब वहाँ विकारी वृत्तियाँ रहती नहीं। आत्मा की जो अनुभूति है, वह धर्म है, उसी को जिनशासन कहा जाता है। जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि मुझे ऐसे आत्मा का अनुभव कब होगा ? चार गति के भ्रमण से थका हुआ, आत्मा के दु:ख की रुचिवाला शिष्य इसप्रकार पूछता है। अंदर से उसको लक्ष्य में आया है कि आत्मा के अनुभव बिना अब तक जो कुछ भी मैंने किया, उसमें किंचित् भी सुख नहीं मिला; तब सुख का मार्ग अंतर में कुछ अन्य ही है।

जिसप्रकार रावण से सीता कभी प्रसन्न नहीं हो सकती; उसीप्रकार शुभाशुभभाव के द्वारा मोक्ष की साधना नहीं की जा सकती।

बंधन के कारण द्वारा आत्मा की साधना किसप्रकार हो सकती है ? बंधन भाव के द्वारा मोक्ष का साधन किसप्रकार होगा ? शुभ-अशुभभाव तो अनंत बार किये—

बीते काल अनंत जो कर्म शुभाशुभ भाव।
तेह शुभाशुभ छेदते उपजत मोक्ष स्वभाव॥

अनंत काल शुभाशुभराग करने में ही बीता, किंतु भेदज्ञान द्वारा शुभ और अशुभ दोनों का नाश करने से मोक्षभाव प्रगट होता है किंतु अशुभ का नाश करके शुभराग करने से उसके द्वारा मोक्ष हो जाये, ऐसा कभी हो सकता नहीं। धर्म तो वीतराग पद है, मोक्षमार्ग वीतराग भावरूप है, जो कि शुद्धात्मा की अनुभूति के द्वारा ही प्रगट होता है। ऐसे अनुभव में जैनशासन का समावेश है। लोगों को अनुभव की महिमा की खबर नहीं है, उनको तो राग के स्थूल परिणामों का परिचय है।

जिसप्रकार सच्चे मोती के पानी का माप वस्त्र को भिगोकर नहीं निकाला जा सकता, उसीप्रकार आत्म-हीरे के चैतन्यप्रकाश को शुभराग के द्वारा नहीं पहचाना जा सकता। चैतन्य हीरे की परीक्षा करने के लिये तो राग से भिन्न अंतर की सूक्ष्म दृष्टि चाहिये। आत्मा ने अनादि से संकल्प-विकल्परूप विकारभावों को ही भोगा है; किंतु उनसे पार वस्तु अंतर में क्या है? उसको लक्ष्य में नहीं लिया। यहाँ आचार्यदेव उसका स्वरूप समझाते हैं।

आत्मा के परमार्थस्वरूप को १४वीं गाथा में दृष्टांत के द्वारा समझाया है। जिसप्रकार कमलपत्र सरोवर के मध्य में स्थित है, उसे जल के संयोगवाली दशा से देखो तो उसमें पानी स्पर्श करता हुआ दिखलाई देता है, किंतु अगर उसके अलिप्त स्वभाव से देखो तो उसमें पानी का स्पर्श नहीं। उसीप्रकार आत्मा को कर्म की ओर से—अशुद्ध अवस्था से देखो तो उसमें कर्मबंधन तथा अशुद्धता दिखलाई देती है किंतु अगर उसके ज्ञायकस्वभाव की ओर उन्मुख होकर देखो (अनुभव करो) तो आत्मा एकरूप शुद्ध ज्ञायकभाव है, उसमें कर्म का संबंध या अशुद्धता नहीं है, ऐसे आत्मा की अनुभूति, वह सम्यग्दर्शन है। ध्रुवस्वभाव को देखने से जो शान्त दशा प्रगट होती है, वह धर्म है। ऐसे धर्म की बात का श्रवण करने के लिये ऊपर से स्वर्ग के इंद्र भी तीर्थंकर प्रभु के समवसरण में आकर अत्यंत आदर सहित प्रभु की वाणी में शुद्धात्मा की बात का श्रवण करते हैं।

सम्यग्दृष्टि इंद्र वह अपने को स्वर्ग का स्वामी नहीं मानता, वह तो अपने को शुद्ध आत्मवैभव का स्वामी समझता है। राग का एक कण भी मेरे स्वभाव की वस्तु नहीं है, वहाँ बाहर के संयोगों की तो बात ही क्या? ऐसा इंद्र भी आत्मा के स्वभाव की चर्चा श्रवण करने के लिये देवलोक में से यहाँ मनुष्यलोक में तीर्थंकर भगवान की धर्मसभा में आता है। क्या वह साधारण पुण्य की अथवा दया-दान-पूजा की बात श्रवण करने आता होगा? यह बात तो साधारण लोग भी जानते हैं, किंतु उससे पार चैतन्य की कोई अपूर्व बात श्रवण करने के लिये इंद्र भी आता है। इस मनुष्य भव में आत्मा का स्वरूप समझ लेने जैसा है। श्रीमद् राजचंद्र १६ वर्ष की आयु में कहते हैं कि—

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या?
संबंध दुःखमय कौन है, स्वीकृत करूँ परिहार क्या?

इसका विचार विवेक पूर्वक शांत होकर कीजिये,
तो सर्व आत्मिकज्ञान के सिद्धांत का रस पीजिये॥ ४॥

अनेक जीवों को अंतर में आत्मा का ऐसा विचार भी जागृत नहीं होता और केवल व्यापार-धंधे में तन्मय होकर पाप में ही जीवन व्यतीत करते हैं; उससे आगे बढ़ें तो किंचित् शुभराग करके संतुष्ट होकर धर्म मान लेते हैं। किंतु भाई! धर्म का मार्ग भिन्न ही प्रकार का है, निवृत्ति लेकर, विवेकपूर्वक अर्थात् राग से किंचित् भिन्न होकर आत्मा के स्वरूप को अंतर में शांति से विचार करना चाहिये। शुद्धात्मा की पहचान करना अर्थात् अनुभव करना, यह जैन सिद्धांत का सार है; इसी में मनुष्यभव की सार्थकता है।

उ...प...का...र

अंतरस्वभाव की सन्मुखता कराके पर से विमुखता-उपेक्षा करवाते हैं, ऐसा हितोपदेश जिन ज्ञानियों ने दिया है, उन ज्ञानियों के उपकार को मुमुक्षु-सत्पुरुष भूलते नहीं हैं।

हे जीव! स्वभाव की ओर जाने से ही शांति प्राप्त होगी, बाह्य लक्ष्य से शांति प्राप्त नहीं होगी; परद्रव्य तुझे शांति का देनेवाला नहीं है, स्वद्रव्य ही तुझे शांति देनेवाला है.... इसलिये पर से परान्मुख होकर स्व में अंतर्मुख हो जा।

—अहा! ऐसा उपदेश ग्रहण करके अंतर्मुख होनेवाला मुमुक्षु ऐसा उपदेश देनेवाले ज्ञानी के उपकार को भूलता नहीं।

सम्यग्ज्ञान मंगलरूप है

लोक में सर्वजनप्रसिद्ध है कि यथार्थ ज्ञान से सर्वसिद्धि है। प्रथम तो दर्शन की विशुद्धिपूर्वक भगवान अरिहंतदेव के प्रति परमभक्ति होती है;—ऐसे सम्यक्त्वसहित और जिनभक्तिसहित ज्ञान को ही सच्चा ज्ञान कहा जाता है। अहा, जिनके वचनों से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, उनके प्रति यदि परमभक्ति उल्लसित न हो तो वहाँ सम्यक्त्व की आराधना कहाँ से होगी ? जिनके वचनों से सम्यक्त्व होता है, ऐसे देव-गुरु के प्रति जो परम भक्ति है; ऐसी भक्तिरहित ज्ञान वह ज्ञान नहीं है परंतु अज्ञान ही है। तथा चैतन्य की प्रतीति होने पर अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के समक्ष जगत के विषयों का स्वाद तुच्छ भासित होता है, इसलिये सहज ही विषयों से विरक्ति हो जाती है। यदि चैतन्यरस की परमप्रीति और विषयों से विरक्ति न हो तो उसने जाना क्या ? उसने संसार और मोक्ष के कारण को किसप्रकार जाना ? विषय तो संसार का कारण हैं और विषयों से विरक्ति करके चैतन्यसन्मुख प्रवृत्ति, वह मोक्ष का कारण है। जो जीव संसार-मोक्ष के कारण को जानता है, उसे चैतन्यानंद के अनुभव की प्रीति है, और विषयों में जो आकुलता का वेदन है, उससे वह विरक्त होता है। अहा, जिसने चैतन्य के परम शांत रस का स्वाद लिया, उसे आकुलताजनक विषयों का रस क्यों रहेगा ? इसप्रकार सम्यग्दर्शन होते ही चैतन्य का रसिक होकर जगत के विषयों से विरक्त होता है; इसलिये सम्यक्त्व भी महान शील है। ऐसे सम्यक्त्वरूपी शीलसहित हो, वह ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है; ज्ञान को और शास्त्रों को जानने की महत्ता तो सम्यक्त्व से ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान की या शास्त्रों के ज्ञातृत्व की कोई बड़ाई नहीं है। अहा, सम्यक्त्वसहित और विषयों से विरक्त ऐसा जो सम्यग्ज्ञान, वह सर्व प्रयोजन की सिद्धि का कारण है, इसलिये वह महान महिमावान है;—इसप्रकार सम्यक्त्वसहित ज्ञान ही मंगलरूप है।

आत्मा का अनुभव भव के अंत का उपाय है

[श्री समयसार गाथा ७३ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

देह से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा कैसा है, उसकी यह बात है। आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप में एकत्वबुद्धिरूप अज्ञानभाव ही जीव को दुःखदायक हैं। प्रभो! उन आस्रवों की प्रवृत्ति से आत्मा किसप्रकार मुक्त हो? अर्थात् आत्मा का दुःख किसप्रकार दूर हो? ऐसा शिष्य जिज्ञासा से पूछता है; उसे आचार्यदेव इस समयसार में आस्रवों से मुक्त होने का उपाय बतलाते हैं। आस्रव तथा आत्मा भिन्न है, इसलिये क्रोध तथा ज्ञान भिन्न हैं—ऐसे भेदज्ञान के द्वारा दोनों को जब भिन्न स्वरूप से पहिचानता है, तब जीव ज्ञान में ही अपनेरूप वर्तता है तथा क्रोधादि परभावों को भिन्न जानकर उनसे वह निवृत्त होता है। इसप्रकार भेदज्ञान के द्वारा आत्मा आस्रवों से छूटकर उसको संवर प्रगट होता है।

मैं आत्मा स्वयं कौन हूँ? उसको पहिचानने का जीव ने कभी श्रम नहीं किया। स्वयं अपने को भूलकर मैं देश का कुछ कर दूं, मैं जाति का-कुटुंब का-ग्राम का कुछ कर दूँ, ऐसी मिथ्याबुद्धि से चार गति के चक्र पर आरूढ़ होकर कभी इस गति में, कभी अन्य गति में, इसप्रकार स्वर्ग-नरक के अनंत अवतार जीव ने किये किंतु आत्मा के ज्ञान के बिना किंचित् भी शांति प्राप्त नहीं हो सकी। यहाँ तो जो जीव ऐसे दुःख से तथा भवभ्रमण से छूटने के लिये प्रश्न पूछता है, ऐसे जीव की बात है। उस जीव को इतना तो भान हो गया कि उन शुभाशुभ-आस्रवभावों से मुझे शांति प्राप्त नहीं हुई है; इसलिये उनका त्याग करनायोग्य है। राग से रहित अपने स्वरूप को समझे बिना मैं संसार में दुःखी हुआ, पाप करके दुःखी हुआ, तथा पुण्य करके भी दुःखी ही हुआ। उन दोनों से पार अपने चिदानंदस्वरूप को मैं पहिचानूं तो मुझे सुख प्रगट होकर दुःख का नाश हो।

देखो, अनादि से जीव ने क्या किया?

जड़ शरीर के कार्यों की प्रवृत्ति जड़ में है, जीव उसका कर्ता नहीं; जीव ने अनादिकाल से अज्ञान द्वारा राग-द्वेष, पुण्य-पाप को अपना मानकर उनके जैसी ही प्रवृत्ति की, उस प्रवृत्ति

का नाम अधर्म प्रवृत्ति है, वह दु:खदायक प्रवृत्ति है। राग से रहित अपने चिदानंदस्वरूप की पहिचान करने से वीतरागविज्ञानरूप प्रवृत्ति होती है; ऐसी ज्ञानप्रवृत्ति, वह धर्मप्रवृत्ति है, वह परम आनंदरूप है।

जीव को संसार का रस है, इसलिये सभी याद रहता है। व्यापार कितना ? पुत्र-पुत्री कितने ? किसकी आयु कितनी ? किस वस्तु का भाव क्या ? उसमें घटा-बढ़ी कितनी ? लाभ कितना ? यह सभी प्रेम से याद रखता है, किंतु यहाँ आत्मा के स्वरूप को समझने की बात आती है, वहाँ कहता है कि हमको कुछ भी याद नहीं रहता—तो उसको आत्मा का प्रेम ही कहाँ है ? आत्मा का सच्चा प्रेम हो तो उसकी बात समझे बिना नहीं रह सकता। चैतन्य की प्रीतिपूर्वक (अर्थात् राग के लक्ष्य से नहीं किंतु चैतन्य के लक्ष्य से) एक बार भी उसकी बात जिसने सुनी है अर्थात् सुनकर लक्ष्य में ली है, वह जीव अल्पकाल में सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करके मोक्षदशा को प्राप्त करेगा।

अरे रे, अनंत काल से मेरा आत्मा संसार में बहुत दु:खी है। मैं अपना सच्चा स्वरूप नहीं समझा, इसलिये मैं दु:खी हुआ; इसलिये सच्चा स्वरूप समझूं तो मेरा दु:ख दूर हो जाये। सच्चा स्वरूप कैसा है ? वह कहते हैं—

मैं एक शुद्ध ममत्वहीन, मैं ज्ञानदर्शनपूर्ण हूँ;
उसमें रह स्थित लीन उसमें, शीघ्र यह सब क्षय करूँ।

प्रथम तो, स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष ऐसा मैं हूँ—ऐसा निश्चय करना। ज्ञानस्वरूप अनुभव करने में किसी पर की, देव-गुरु-शास्त्र की या शुभराग की भी अपेक्षा नहीं है, स्वयं कार्य करे तो निमित्त को उपचार से कारण कहा जाता है। स्वयं अपने स्वसंवेदन से वह उत्साही आत्मा का स्वानुभव करता है। राग का एक कण भी मुझे धर्म प्राप्त करने में किंचित् भी सहायता करेगा, ऐसा जो मानता है, वह राग से भिन्न कभी नहीं हो सकता तथा उसको ज्ञानस्वरूप आत्मा कभी अनुभव में नहीं आयेगा। यहाँ तो कहते हैं कि स्व को भूलकर केवल राग को जानने में रुकनेवाला ज्ञान, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। वह ज्ञान नहीं किंतु अज्ञान है, खंड-खंड ज्ञान है। अंतर में ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होकर उसका सिंचन करे, वही सच्चा ज्ञान है। ऐसी ज्ञानचेतनास्वरूप आत्मा का अनुभव करने से भव का अंत आवेगा।●

स्वानुभव ही मोक्षमार्ग है

[श्री समयसार, गाथा ७३ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

यह समयसार आत्मशास्त्र है—आत्मा के सच्चे स्वरूप को बतलानेवाला है।

जीव ने अपना स्वरूप समझे बिना अनादि काल से पाप तथा पुण्य के भाव ही किये हैं; इसने न तो शरीरादिक का कुछ किया, तथा नहीं अपने स्वभाव का कार्य किया;—जड़ का तो यह कुछ कर सकता ही नहीं; अपने स्वभाव का ज्ञान करने की भी इसको इच्छा नहीं; अज्ञान से ही केवल शुभाशुभ परिणाम करके संसार में भ्रमण करके दुःखी हुआ है।

अब इस दुःख को दूर करके सुखी किसप्रकार हो ? कि अज्ञान दूर करके आत्मा के स्वरूप का सच्चा ज्ञान करे तो जीव को सुख होकर दुःख दूर हो। इसके लिये आत्मा का सच्चा स्वरूप यहाँ आचार्यदेव बतलाते हैं।

धर्मी जानता है कि मैं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष आत्मा हूँ। प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान में परोक्षपना रहे, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं है, वहाँ राग, इन्द्रियों की तो बात ही कहा ? उनसे तो आत्मा भिन्न है। विकल्प का स्वामीपना भी मेरे ज्ञानस्वरूप में नहीं है, अर्थात् मैं ममत्वरहित हूँ; ज्ञान-दर्शन से पूर्ण हूँ, राग से रहित हूँ। इसप्रकार आत्मा में एकाग्र होने से अज्ञानरूप आस्रव छूट जाते हैं।

जिज्ञासु शिष्य ने ऐसा पूछा कि पुण्य-पापरूप आस्रवों से मैं किसप्रकार मुक्त होऊँ ? पुण्य से भी अनंत काल तक मैंने प्रवर्तन किया, अनंत बार पुण्य किये, फिर भी सुख नहीं पाया, इसलिये इस पुण्य से भी छूटने जैसा है—इतना लक्ष्य में लेकर शिष्य आस्रवों से मुक्त होना चाहता है।

अपने ज्ञान-आनंद से कोई भी छूटना नहीं चाहता, क्योंकि वह तो आत्मा का सहज स्वरूप ही है; शुभ-अशुभ रागादि परभावों से जीव छूटना चाहता है, क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप नहीं है किंतु आत्मा को दुःखदायक है। आत्मा के ज्ञान-आनंदस्वभाव से रागादिभाव

भिन्न हैं, एकरूप नहीं हैं, इसलिये उनसे छूटा जा सकता है। इसप्रकार प्रथम ज्ञानस्वभाव तथा रागादि विभावों की भिन्नता लक्ष्य में लेकर इसका निर्णय करना चाहिये।

जीव ने अपने स्वरूप का कभी निर्णय नहीं किया, उसका सच्चा निर्णय करके स्वसन्मुख होना, यह अनुभव का मार्ग है, हित का उपाय है।

हे भाई! आत्मा के हित के लिये तू ऐसा निर्णय कर कि मैं आत्मा एक अखंड स्वानुभवप्रत्यक्ष हूँ। ऐसा निर्णय करके उस ओर जाने से आत्मा स्वयं आनंदरूप अनुभव में आयेगा।

मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, रागरूप होने का मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा निश्चय करके राग से छूटना चाहता है। जो जीव रागरूप परिणमन करने का अपना स्वभाव मानता है, अथवा राग के द्वारा धर्म होगा, ऐसा मानता है, तो वह जीव राग से कब छूटना चाहेगा? जिसको अपना माने, उसका त्याग कैसे कर सकता है? इसलिये प्रथम ही यह निर्णय किया कि यह रागादि मेरा स्वरूप नहीं तथा मैं इनका स्वामी नहीं, मैं तो अखंड ज्ञान ही हूँ। ज्ञान की शुद्धता में राग का तो अभाव है।

आत्मा अनंत ज्ञानादि स्वभाव से पूर्ण हूँ; किंतु उसमें वह प्रवर्तन नहीं करता; तब किसमें प्रवर्तन करता है? राग-द्वेष-क्रोधादि परभावों में अपनेरूप प्रवर्तन करता है; यह प्रवृत्ति ज्ञान से विरुद्ध अर्थात् दु:खदायक है। प्रत्येक आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है; अपने स्वरूप को पहिचानकर उसमें जब प्रवर्तन करे, तब उसका कल्याण होगा; अन्य कोई कहे कि मैं उसका कल्याण कर दूँ तो यह उसकी भूल है; उसने अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचाना नहीं है। बाहर की अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री तो जीवों को अपने-अपने पुण्य-पाप के अनुसार प्राप्त होती है, उस सामग्री में सुख-दु:ख नहीं हैं, इसीप्रकार अन्य कोई भी वह सामग्री प्रदान भी नहीं कर सकता। शरीर की तथा संयोग की स्थिति मर्यादित है; आत्मा शरीर की स्थिति जितना नहीं है; आत्मा तो अनादि-अनंत है, अपने ज्ञानमय जीवन से जीवित रहनेवाला है। आत्मा के जीवन को कोई भी नाश नहीं कर सकता अर्थात् आत्मा की मृत्यु कभी होती नहीं। ऐसे आत्मा को पहिचानकर राग से भिन्न ज्ञानपरिणति हो, उसका नाम मोक्षमार्ग है।

आत्मा चैतन्य-हंस है। जिसप्रकार हंस दूध तथा पानी को भिन्न करके दूध को ग्रहण

करता है; उसीप्रकार ज्ञान तथा राग इन दोनों की भिन्नता का ज्ञान करके धर्मी जीव (चैतन्य-हंस) रागादि का त्याग करके निर्मल ज्ञान-आनंद का वेदन करता है।

आत्मा निजस्वरूप को भूलकर मिथ्यात्व तथा राग-द्वेषभाव से संसार में चार गति के दु:ख भोग रहा है। उन दु:खों से आत्मा किसप्रकार छूटे ?—इसका जिसको बारंबार स्मरण आता हो, ऐसे जीव को प्रश्न उठता है कि प्रभो ! यह आत्मा दु:खदायक आस्रवों से किसप्रकार मुक्त हो ? उसको आत्मा का परमार्थ स्वरूप समझाते हैं। प्रथम रागमिश्रित भूमिका में 'ज्ञान द्वारा' आत्मा का स्वरूप निश्चित करता है। ज्ञान को एकदम अंतर्मुख करते हुए प्रथम उस ओर का विकल्प रहता है; किंतु वहाँ जो विकल्प है, वह विकल्प कहीं आत्मा के अनुभव का कारण नहीं है। विकल्प से भिन्न होकर ज्ञान को अंतर्मुख करे, तब आत्मा का अनुभव होता है। ऐसा अनुभव, यह अपूर्व वस्तु है। अपूर्व है—किंतु आत्मा के द्वारा हो सके, ऐसी है; अपूर्व होते हुए भी अशक्य नहीं है। परवस्तु को अपनी मानकर भी उसको अपनी बनाना, यह तो अशक्य है, हो सकता नहीं। राग से, पुण्य से मोक्ष की साधना करना चाहे तो यह भी अशक्य ही है, राग के द्वारा मोक्ष अथवा धर्म नहीं हो सकता। आत्मा का राग से भिन्न स्वरूप अनुभव में लेना, वह दुर्लभ होते हुए भी जीव से किया जा सके ऐसा है। अनंत जीव ऐसा अनुभव करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। ऐसा अनुभव करने की यह रीति बतलाई जा रही है।

आत्मा ज्ञान-दर्शन से ही संपूर्ण-परिपूर्ण है, उसमें किसी भी विकल्प के प्रवेश का अवकाश नहीं है। चेतना की निर्मल अनुभूतिस्वरूप आत्मा है, उसमें मैं कर्ता, निर्मल पर्याय वह कार्य इत्यादि कारक-भेद का विकल्प नहीं। विज्ञानघन आत्मा विकल्पगम्य होता नहीं। चैतन्य निधान की प्राप्ति तो अंतर्मुख उपयोग से होती है, इन्द्रियों की ओर बाह्य झुकाव से चैतन्य निधान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

विकल्प किसप्रकार रुके ? कि आत्मा तथा राग की भिन्नता पहिचानकर ज्ञान में उपयोग एकाग्र हुआ, वहाँ राग से निवृत्ति हुई, विकल्पों से भिन्नता हुई, ज्ञान में ही अपनेरूप प्रवर्तन किया अर्थात् सम्यग्दर्शन हुआ तथा मोक्षमार्गरूप धर्म का प्रारंभ हुआ।

ज्ञान-दर्शनमय संपूर्ण स्वभाव हो तो उसमें राग का खंड किसप्रकार हो सकता है ? राग हो, वहाँ अखंड ज्ञान नहीं रहता। धर्मी तो अपने को राग से भिन्न अखंड ज्ञानरूप अनुभव करता है। ऐसे अनुभव के द्वारा ही चैतन्यनिधान की प्राप्ति और क्रोधादि अज्ञानमय भावों का क्षय होता है।●

परमात्मदशा की भावना

[वांकानेर (सौराष्ट्र) में श्री समयसार, गाथा १ तथा १५ पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन]

मंगलाचरण में स्वामीजी ने समयसार की पहली गाथा का स्मरण करके 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' कहकर अनंत सिद्ध भगवंतों को नमस्काररूप मंगल किया। जिस ज्ञान में अनंत सिद्ध भगवंतों को स्वीकार किया गया, वह ज्ञान, राग से पृथक् होकर अपने ज्ञानानंदस्वभाव की ओर झुका है; यह अपूर्व मंगल है।

आज इस मंडप में मंगल हो रहा है। टीका में अमृतचंद्राचार्यदेव ने प्रथम अथ शब्द रखा है, यह मंगल-सूचक है। अनादि काल से राग-द्वेष-अज्ञानरूप जो मोहवासना (पर-परिणति) थी, वह अमंगल था। उस भाव को दूर करके अब आत्मा में अनंत सिद्ध भगवंतों की स्थापना करके साधकभाव प्रारंभ होता है, यह अपूर्व मंगल है। सदाकाल छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव मोक्ष प्राप्त करते ही हैं, ऐसा सर्वज्ञ ने देखा है, इसके अनुसार वर्तमान तक के कालचक्र के प्रवाह में अनंत सिद्ध भगवान हो गये; उनको अपनी आत्मा में स्थापित करता हूँ अर्थात् उनको पहिचानकर अपनी पर्याय में शुद्धात्मा का आदर करता हूँ तथा राग के आदर का त्याग करता हूँ। सिद्धपद का आदर करता हूँ अर्थात् स्वभावसन्मुख होता हूँ। हे सिद्ध भगवंत! मेरी ज्ञानदशा में आप पधारो; आप मेरे ज्ञान में विराजमान हो जाओ अर्थात् अल्पज्ञता या राग-द्वेष मेरी पर्याय में रहे नहीं। जहाँ अनंत सिद्ध विराजमान हैं, वहाँ राग-द्वेष किसप्रकार हो सकता है? सिद्धस्वरूप के लक्ष्य से राग को दूर करके मैं भी परमात्मा बनूँगा, सिद्धपद प्राप्त करूँगा। ऐसी भावना से सिद्ध को नमस्काररूप अपूर्व मंगल किया है।

लोग एक साधारण पुण्यवंत राजा का भी आदर करते हैं, तब सिद्ध भगवान तो तीन जगत् के श्रेष्ठ आत्मवैभव से शोभायमान राजा हैं, उनका अपूर्व भाव से आदर करता हूँ। अनंत सिद्धपद प्रगट करने की आत्मा में शक्ति है—उसका विश्वास करके आदर किया है, यही मंगल है। आत्मा का ऐसा स्वभाव है, उसको प्रतीति में लेने से सुख की प्राप्ति तथा मोह का नाश हुआ, यह मंगल है, ऐसा मांगलिक आनंद का दाता है। अनंत सिद्ध हुए, वे राग से रहित

केवलज्ञानमय हैं – इसका स्वीकार करने से स्वयं के शुद्धस्वभाव की ओर उन्मुखता होकर राग की ओर झुकाव नहीं रहता। यही अपूर्व मंगल है।

अनंत सिद्ध भगवंतों का स्मरण करके मैं अपने पूर्ण स्वभाव को याद करता हूँ; उसका आदर करता हूँ, उसके आदर से मोहदशा का नाश होकर परमात्मदशा प्रगट होगी—इसप्रकार मंगल किया।

दूसरे दिन चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को समयसार की १५वीं गाथा पर प्रवचन करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहा कि—आज भगवान महावीर परमात्मा की जयन्ती है; यहाँ (वांकानेर-जिनमंदिर में) भगवान् की वर्षगाँठ भी आज ही है। भगवान को जन्म के साथ ही आत्मज्ञान था; पश्चात् इस अंतिम अवतार में केवलज्ञान प्रगट करके परमात्मा हुए। उन्होंने अपने आत्मा को कैसा अनुभव किया, तथा कैसा उपदेश दिया? इसकी चर्चा इस समयसार की पंद्रहवीं गाथा में है। आत्मा का अनुभव करनेवाला भावश्रुतज्ञान कहो या जिनशासन कहो, उसकी यह बात है। जिनशासन अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वभाव की कोई अचिंत्य महिमा है। विकल्प के साथ एकता का नाश होकर निर्विकल्प वेदन से आत्मा का अनुभव होता है, वह जिनशासन है। ऐसी अनुभूति, यह आत्मा ही है। आत्मा का अनुभव करते समय उसमें समस्त जिनशासन की अनुभूति आ गई है। शुद्ध आत्मा को पहिचाना, उसने भगवान के सर्व उपदेश को जान लिया अर्थात् जिनशासन को जान लिया।

आत्मा का जो सहज एकरूप स्वभाव, उस स्वभाव की ओर झुकी हुई पर्याय, उसमें सामान्य ज्ञान का आविर्भाव है, तथा विशेषरूप भेद का तिरोभाव है, अर्थात् उस अभेद के अनुभव में भेद रहते नहीं। ज्ञान की एकता का अनुभव, उसको सामान्य का प्रगटपना कहा; ऐसे ज्ञान की अनुभूति करके भगवान ने जगत् को वैसी अनुभूति का उपदेश दिया है। इन्द्रियों की ओर झुकनेवाला खंड-खंड रागवाला ज्ञान, उसमें आत्मा का प्रकाश नहीं, आत्मा तो अभेद स्वभाव की ओर झुकी हुई, निर्मल पर्याय में प्रकाशित होता है। यह महावीर का संदेश है कि अंतर्मुख ज्ञान के द्वारा आत्मा को अनुभव करे। अंतर्मुख ज्ञान के द्वारा आत्मा जीवित है, इसप्रकार आत्मा को जीवित रखो, ऐसा सच्चा जीवन भगवान ने बतलाया है। इसके अतिरिक्त देह से, भोजन से या राग से आत्मा जीवित नहीं है। आत्मा के जीवन के लिये किसी भी निमित्त

की, राग की या भोजन की आवश्यकता नहीं है। तीनों काल चैतन्यप्राण से आत्मा स्वयं जीवित है। आत्मा का ऐसा जीवन प्रगट करे, उसी को सच्चा वीर कहा जाता है।

राग तथा इन्द्रियों के मिश्रण से रहित ज्ञान की अनुभूति, उसमें सामान्यज्ञान का आविर्भाव है। इन्द्रियाँ तो कहीं रह गईं—वे तो जड़ में चली गईं, उन इन्द्रियों की ओर का ज्ञान, उसमें जो रुके, वह भी शुद्धात्मा को नहीं पहिचान सकता। इन्द्रियों से तथा राग से पार, अंतर्मुख ज्ञान के द्वारा आत्मा का अनुभव करना, वह भगवान् महावीर का मार्ग है। ऐसे अनुभव का साधन क्या ? कि उसका साधन बनने की शक्ति भी तुझमें ही विद्यमान है; अन्य बाहर के किसी भी साधन की खोज करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान आत्मा स्वयं रागप्रवृत्ति से भिन्न होकर ज्ञान में प्रवर्तन करे, तब आत्मा की सच्ची अनुभूति होकर मिथ्यात्व का नाश होता है। ज्ञानी तो ज्ञान में प्रवर्तता हुआ राग को भी जानता है, परंतु राग को जानता हुआ स्वयं राग में तन्मय होकर प्रवर्तन नहीं करता। नित्यज्ञान के साथ एकाकार होकर ज्ञानाकार से ज्ञान हुआ, उसमें सामान्यज्ञान का आविर्भाव कहा। जो विशेषरूप ज्ञान है, वह भी रागादिक से भिन्न ही है। राग से पार स्वसंवेद्य आत्मा है, उसको स्वानुभव में अन्य किसी की अपेक्षा नहीं है। ऐसे आत्मा का अनुभव किया, उसके फल में भगवान को ऐसी परमात्मदशा प्रगट हुई कि—

सादि अनंत अनंत समाधि सुखमां,
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो।

अहा! अनादि संसार का अन्त आया तथा अपूर्व सिद्धपद का प्रारंभ हुआ, उदयभाव का सर्वथा अभाव होकर पूर्ण क्षायिकभाव का प्रारंभ हुआ, पारिणामिकभाव तो सदाकाल एकरूप है। ऐसा अपूर्व महिमावंत कार्य जिससे प्रगट हुआ, उस कारण की महिमा भी अपूर्व ही होती है। राग तथा इन्द्रियज्ञान कहीं उसका कारण नहीं हो सकता।

धर्मी ने अपने आत्मा को देह से भिन्न देखा है, इसलिये अन्य आत्मा को भी बालक इत्यादिरूप में न देखकर शुद्धवस्तुरूप देखते हैं। महावीर तीर्थंकर अभी तो बाल्यावस्था में ही थे तब संजय-विजय नाम के दो मुनिवरों की सूक्ष्म शंका उनको देखते ही दूर हो गई, इसलिये उन्होंने उनका नाम 'सन्मतिनाथ' रखा। अंतर के चैतन्यतत्त्व को देखते ही शंकाओं का समाधान हो जाता है। तीर्थंकर के आत्मा की कोई अचिंत्य ही महिमा होती है। ऐसे तीर्थंकर

परमात्मा के जन्मकल्याणक का आज मंगल दिवस है। भगवान महावीर वैशाली के कुंडग्राम में (जो कि वर्तमान में मुजफ्फरपुर जिले में है) जन्मे थे, तथा जन्म धारण करके भावश्रुतज्ञान के बल द्वारा केवलज्ञान का साधन किया।

अहो! धर्मी साधक जीव मति-श्रुतज्ञान के द्वारा केवलज्ञान को आमंत्रित करता है। केवलज्ञान को भावश्रुत के समीप लाता है। भावश्रुतज्ञान में शुद्ध आत्मा को अनुभव में लिया, तब केवलज्ञान होता ही है। परज्ञेयों में जिसका ज्ञान आसक्त है, उसको ऐसा भावश्रुतज्ञान अनुभव में नहीं आता। भावश्रुत तो शास्त्र से भी पार है। शास्त्र का श्रवण तो कान का विषय है, उसके द्वारा आत्मा का अनुभव किसप्रकार हो सकता है? परज्ञेय के अवलंबन से स्वज्ञेय किसप्रकार पकड़ में आ सकता है? परज्ञेय में जो आसक्त है अर्थात् परज्ञेय की ओर झुकाव में किंचित् भी लाभबुद्धि मानता है, वह जीव स्वज्ञेय में आसक्त नहीं, अर्थात् उसे स्वज्ञेय ऐसे शुद्धात्मा के अनुभवरूप भावश्रुत प्रगट नहीं होता। यहाँ तो भावश्रुत के द्वारा आत्मा को पकड़कर सम्यग्दर्शन प्रगट करने की बात है। जिसने ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति के द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह जीव वीर प्रभु के मार्ग में लग गया, जिनेश्वरदेव का लघुनंदन हो गया।

सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि तू हमारी ओर नहीं किंतु अपने आत्मा की ओर झुक! अपने ज्ञान को आत्मा की ओर ले जाकर स्वज्ञेय में एकाग्र हो जा। ऐसा तो वीतराग ही कह सकते हैं। हमारे सामने देख—ऐसा भगवान नहीं कहते; हमारे सामने नहीं किंतु स्वयं के आत्मा के सामने देख तो तेरा उद्धार होगा—ऐसा वीतराग परमात्मा कहते हैं। अहो! वीतराग का स्वसन्मुख मार्ग कोई अलौकिक ही है।

ज्ञानी तो रागादि परभावों को जानते हुए भी स्वयं ज्ञानरूप ही अपना अनुभव करता है। राग को जानते हुए भी उस समय ऐसा अनुभव नहीं करता कि मैं राग हूँ, किंतु ऐसा अनुभव करता है कि राग को परज्ञेयरूप जाननेवाला मैं राग से भिन्न ज्ञानरूप हूँ।—ऐसी जो परभावों से भिन्न शुद्धज्ञान की अनुभूति, वह जैनधर्म है।

भावश्रुत पर्याय को आत्मा कहा। ज्ञान की स्वसन्मुख अनुभूति, वह शुद्धात्मा की अनुभूति है। वह स्वयं आत्मा ही है। अनुभूति से भिन्न आत्मा नहीं। आत्मा की ऐसी अनुभूति करते हुए वीतरागभाव उत्पन्न होते हैं, वह धर्म है। जिनशासन में देव-गुरु ने ऐसी अनुभूति करने का उपदेश दिया है।●●

वैराग्यप्रेरक उत्तम लेख

[लेखक—सौ. पुष्पाबहिन एम. दोशी घाटकोपर, बम्बई]

गुजराती आत्मधर्म की निबंध-योजना में विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य अनेक जिज्ञासुजनों ने भी भाग लिया था। ऐसी ही एक जिज्ञासु बहिन का वैराग्यमय यह लेख है। संसार में चाहे जैसे प्रसंगों पर भी अपने मुमुक्षुजनों की विचारधारा कितनी उच्चकोटि की एवं वैराग्य की ओर झुकी हुई होती है—उसकी जानकारी इस लेख को पढ़ने से होगी। (संपादक)

प्रारंभ में वे लिखती हैं कि गुजराती आत्मधर्म अंक ३१६ में निबंध के लिये जो सात विषय रखे गये थे, वे अति सुंदर हैं, उनमें से तीसरा विषय पसंद करके मैं यह वैराग्यप्रेरक लेख लिखती हूँ।

जीव को वैराग्य की ओर ले जाने के लिये संसार में ऐसे अनेक अवसर आते हैं, परंतु जब अति निकट स्नेहीजन का अवसान होता है, तब वह करुण अवसर अत्यंत वैराग्य का कारण होता है; उस काल व्यक्ति चारों ओर से वृत्ति हटाकर शांति तथा समाधान कैसे प्राप्त हो, उसकी खोज करने में लग जाता है। ऐसी परिस्थिति में सर्वज्ञ वीतराग कथित स्वधर्म की शरण ली जाये तो समाधान प्राप्त किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

इस संसार में जिसका जन्म हुआ है, वह एक दिन अवश्य मरनेवाला है। जो संयोग है, वह साथ में वियोग लेकर ही आया है। इस देह की स्थिति मर्यादित है, यह कहीं नित्य रहनेवाली नहीं है। देह तो विनाशीक है; अविनाशी तो आतमराम है; बड़े हों या छोटे, वृद्ध हों या युवक, सभी को एक दिन शरीर का त्याग करके अन्य स्थान पर जाना ही है।—यह तो संसारी जीव का क्रम है, फिर भी मनुष्य संसार के मायाजाल में ऐसा फँस गया है, भोग-

विलास के रंग में ऐसा रंग गया है कि आत्मा के कल्याण को भूलकर बाह्य सुखों में फँसा रहता है। देह-मंदिर में निवास करनेवाले अपने ज्ञायक देव को भूलकर, बाह्य में इस जड़ पुतले के आकर्षण में, इसकी सजावट में तल्लीन रहता है; परिणाम यह होता है कि देह की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का भी इसको भान नहीं रहता, शरीर के पीछे जीवन व्यर्थ ही चला जाता है। अरे, देहादि संयोगों की नश्वरता को कौन नहीं जानता ? वे तो चाहे जिस समय छूट जायेंगे। पृथक् हैं, इसलिये पृथक् होते हैं। पूर्णतया स्वस्थ सुंदर मनुष्य दूसरे ही क्षण एक्सीडेन्ट का भोग बनता हुआ दिखलाई देता है; तो कोई हृदय-गति बंद होने का शिकार होता है; करोड़पति का युवा पुत्र ४० वर्ष का राजकुंवर जैसा, रात्रि को तो पूर्ण स्वस्थ रहकर सोता है और प्रातःकाल देखो तो जीवित नहीं रहता; अचानक मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु का समाचार सुनते ही उसके स्वजनों को मोह के कारण कितना दुःख होता है ? इसके अतिरिक्त वे करेंगे ही क्या ? या तो शोक से दुःखी हों, या ज्ञान के लक्ष्य से वैराग्य उत्पन्न करके समाधान करें। बाकी तो तीन लोक के नाथ साक्षात् तीर्थंकर भगवान भी किसी की आयु में एक समय की भी वृद्धि करने में समर्थ नहीं हैं। आयु में परिवर्तन करने में इन्द्र-नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं। देवलोक के देवों की आयु करोड़ों-अरबों वर्ष की होती है परंतु उनका भी मरण समय आता है, तब उनकी रक्षा करके उनको मरण से कोई भी बचा नहीं सकता; तो फिर इस मनुष्य-लोक के साधन-सुविधाएँ या डॉक्टर अथवा कुटुम्बीजन तो क्या कर सकते हैं ? शरीर के साथ स्वजनों का संबंध है, इसलिये उन्हें दुःख होता है। नाश तो शरीर का होता है, आत्मा तो अमर है; वह तो शरीररूपी घर को बदलकर अन्य घर में जाता है। यदि शरीररहित ऐसे आत्मा के ऊपर दृष्टि करे तो उसको फिर ऐसा शरीर धारण करने का अवसर ही प्राप्त न हो; आत्मा तो देह से रहित स्थायी जीवन जीता है, और मोक्षपुरी में शाश्वत् आनंद का उपभोग करता है।

पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि—यह मनुष्य भव बिजली की चमक जैसा है, पानी के बुलबुले के समान क्षणिक है; हे भाई ! यदि तूने इस मनुष्यभव में भी सत्समागम से आत्महित के लिये कुछ नहीं किया तो अनन्त जन्म-मरण के चक्कर में घूमता रहेगा। इसलिये इस भव में ही शीघ्र प्रमाद को छोड़कर तीव्र बुद्धि का उपयोग करके सच्चा आत्मार्थी बन और जड़-चेतन की अत्यंत भिन्नता को समझ ले। अरे जीव ! पूर्व पुण्य के फल से इस जीवन में धर्म करने योग्य सभी प्रकार की अनुकूलता तथा ज्ञानी का सत्संग प्राप्त हुआ है तो इसी समय आत्महित के लिये

तैयारी कर ले; क्योंकि जीव तो अकेला ही शरीर को छोड़कर चला जाता है; साथ में पुण्य-पाप के फल तथा धर्म के संस्कार ही आते हैं। इस लोक की कोई दूसरी वस्तु साथ देनेवाली नहीं है।

संसार की भ्रमणा ऐसी है कि जीव को अनादिकालीन अभ्यास होने से वह बाह्य प्रलोभन में फँस जाता है; परंतु यदि तीव्र पुरुषार्थ करे तो उसे रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है। आत्मा स्वयं आनंदमय है, सुख तथा शांति का समुद्र है। पुण्य-पाप के फल में अनुकूलता-प्रतिकूलता की कल्पना किये बिना, केवल चिदानंदस्वभाव में ही चित्त को केन्द्रित करने से सच्ची अपूर्व शांति का अनुभव किया जा सकता है।

इसप्रकार ऐसे शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति के लिये, उसकी भावना सहित नियमित शास्त्रस्वाध्याय, विचार-मनन तथा सत्संग अवश्य करना चाहिये। महासती अंजना के दु:खों का वर्णन पढ़ने से कैसा वैराग्य आता है? प्रतिकूलता हो तो भले ही हो, जीव को अपनी वैराग्य-भावना में स्थिर रहकर उसकी वृद्धि करना चाहिये। प्रतिकूलता के अवसर में जीव के भावों की कसौटी होती है। हम सब आत्मा की भावना सहित उस कसौटी से पार होकर आनंदमय निज आत्मपद को प्राप्त करें-यही अंतरेच्छा।

सन् १९७१ की जनगणना के समय 'धर्म' के खाना नं० १० में गौत्र, जाति आदि ना लिखाकर केवल 'जैन' ही लिखाकर सही संख्या इकट्ठी करने में सरकार की मदद करें।

विविध समाचार

सोनगढ़—(तारीख १४-११-७०) पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में अष्टपाहुड़ तथा समयसारजी हैं। स्वामीजी का विहार तारीख २१-११-७० के प्रातःकाल हो रहा है। कार्यक्रम निम्नानुसार है—अहमदाबाद में तारीख २१-११-७० से २५-११-७०तक। हिम्मतनगर में तारीख २६-२७, रणासण में २८-२९, फतेपुर (जिला साबरकांठा) तारीख ३०-११-७० से ७-१२-७० तक। यहाँ समवसरण जिनमंदिर का शिलान्यास मगशिर सुद ८ को होगा, तथा ८ दिन के लिये जैन शिक्षण शिविर का विशाल आयोजन है। तारीख ८-१२-७० को अहमदाबाद तथा तारीख ९-१२-७० को स्वामीजी सोनगढ़ लौटेंगे।

कुण (उदयपुर)—सनावद निवासी श्री कँवरचंदजी की ओर से यहाँ 'निर्मल' वीतराग विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन-समारोह श्री सुंदरलालजी (उदयपुर) द्वारा हुआ। इस पाठशाला में ६० बालक नियमित पढ़ने आते हैं—जैनेतर समाज के लोग भी रुचिपूर्वक भाग ले रहे हैं। *—मांगीलाल वरदीचंद जैन*

बानपुर (झाँसी)—यहाँ विदिशा निवास प्रज्ञाचक्षु श्री राजमलजी की प्रेरणा से 'मुमुक्षु मंडल' की विधिपूर्वक स्थापना हुई है। प्रवचन में जैनेतर बंधु भी उत्साह से लाभ लेते हैं। *—कस्तूरचंद जैन*

जयपुर में अपूर्व आध्यात्मिक आयोजन

श्री पूरणचंदजी गोदीका की अध्यक्ष में जयपुर जैन समाज का एक प्रतिनिध-मंडल पूज्य श्री कानजीस्वामी की सेवा में जयपुर नगर में पधारने की प्रार्थना करने के लिये उपस्थित हुआ। बड़े हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि पूज्य स्वामीजी ने दिनांक १५ मई सन् १९७१ से ४ जून ७१ तक जयपुर विराजने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। इस ही अवसर पर श्री

टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर के अंतर्गत होनेवाले शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविर का आयोजन तारीख १५ मई से ३ जून तक रखा गया है।

नेमीचंद पाटनी
मंत्री
टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर, जयपुर

आगरा में दिगम्बर जैन स्वाध्याय-मंडल का तृतीय वार्षिकोत्सव

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल नाई की मंडी, आगरा का तृतीय वार्षिकोत्सव गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी बड़े हर्ष और उल्लास के साथ श्रीमान् परमेष्ठीदासजी जैन, एडवोकेट की अध्यक्षता में दिनांक ३०-१०-७० शुक्रवार को १ बजे से श्री जगन्नाथ धर्मशाला, नाई की मंडी, आगरा में मनाया गया।

इस अवसर पर सम्यग्दर्शन की महत्ता पर अनेक विद्वानों के सारगर्भित भाषण हुए जिनमें पंडित धन्नालालजी (ग्वालियर), पंडित नेमीचंदजी पाटनी, पंडित मधुकरजी (भोपाल), पंडित रमेशभाई (मलकापुर), पंडित बलभद्रजी, पंडित सुमेरचंदजी भगत, पंडित केवलचंदजी शास्त्री, मास्टर रामसिंहजी, ब्रह्मचारी राजकुमारजी और पंडित श्री ख्यालीरामजी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। *—पद्मचंद जैन सर्राफ*

भोपाल में मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल के पदाधिकारियों की बैठक

दिनांक १-११-७० को म.प्र. मुमुक्षु मंडल के पदाधिकारियों की एक आवश्यक मीटिंग आयोजित की गई; जिसमें संस्था के उपाध्यक्ष श्री जवाहरलालजी, मंत्री श्री डालचंदजी, उपमंत्री श्री ज्ञानचंदजी एवं सूरजमलजी, कोषाध्यक्ष श्री राजमलजी गोहिल के साथ ही विशेष आमंत्रण पर भोपाल निवासी श्री राजमलजी, बी.काम, श्री राजमलजी पवैया, श्री सौभाग्यलजी, श्री डॉ. कपूरचंदजी 'कौशल' एवं रतनलालजी सोगानी सम्मिलित हुये। इस मीटिंग में अनेक आवश्यक विषयों पर पर्याप्त विचार-विमर्श करके उन पर महत्त्वपूर्ण निर्णय

लिये गये तथा यह भी निर्णय लिया गया कि जैनधर्म के विशेष प्रचार हेतु प्रत्येक जिले के मुमुक्षु मंडलों से अनुरोध किया जाये कि वे अपने जिले के अंतर्गत ग्रामों में जाकर वहाँ मुमुक्षु मंडल की शाखाएँ स्थापित करें और उनके द्वारा नियमित देव-दर्शन, पूजन एवं स्वाध्याय आदि धार्मिक भावनाओं के द्वारा समाज में आध्यात्मिक चेतना जागृत करने का प्रयत्न किया जावे।

उक्त निर्णय के संबंध में श्री जवाहरलालजी एवं श्री ज्ञानचंदजी ने विदिशा मुमुक्षु मंडल की ओर से विदिशा जिले में एवं श्री डॉ. कपूरचंदजी आदि ने भोपाल मुमुक्षु मंडल की ओर से सीहोर एवं रायसेन जिले में उक्त प्रचार-कार्य करने का आश्वासन दिया।

— श्री सूरजमलजी जैन 'उपमंत्री'
म.प्र.मु. मुडल कार्यालय, भोपाल

श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी महाराज का स्वर्गवास

रतलाम (म.प्र.)—क्षुल्लकजी महाराज श्री पूर्णसागरजी जो चातुर्मास में सोनगढ़ थे। सानंद, संतोष सहित चातुर्मास पूर्ण होते ही आपने दमोह जाने की इच्छा प्रगट की, बीच में रतलाम ठहरना जरूरी था। यहाँ जिनमंदिर में गिर जाने से गहरी चोट लगी; पाँच दिन तक वहाँ जैन समाज ने अच्छी तरह भक्तिसहित वैय्यावृत्त्य की थी। तारीख ८-११-७० को आयु पूर्ण होते ही नगर में पालखी निकाली गई; अग्निदाह शोकसभा विधि हुई। क्षुल्लकजी को दिगम्बर जैनचार्यों के प्रति अत्यंत आदर था तथा श्री कानजीस्वामी के प्रति श्रद्धा एवं सन्मान था; आप बारंबार सोनगढ़ समागमार्थ आते थे। आपकी आत्मा जिनेन्द्र कथित मार्ग द्वारा शीघ्र परमात्म दशा को प्राप्त हो ऐसी जिनेन्द्र सन्मुख हमारी भावना है। (मोहनलालजी छाबड़ा द्वारा रतलाम से पत्र आया उस समाचार ऊपर से) — *ब्रह्मचारी गुलाबचंदजी जैन*

समभाव में किंचित् विकल्प नहीं

अरे, पढ़ने-पढ़ाने का एक छोटा सा विकल्प भी स्वरूप के निर्विकल्प समभाव को रोकनेवाला है; वहाँ बाहर के अन्य विकल्पों की बात ही क्या? पर का करूँ या राग करूँ —ऐसी कर्तृत्वबुद्धि से तो महान विषमभाव है, उसमें स्वरूप की शांति का वेदन कहाँ से होगा? पर से भिन्न, राग से भिन्न, सहज चैतन्यस्वरूप के अनुभव सहित धर्मी को सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान हुए, उतना वीतरागभावरूप समभाव है, तथापि अभी शास्त्रादि संबंधी विकल्प उत्पन्न होते हैं तो उतना भी परम समाधिभाव में विक्षेप होता है, शुद्धोपयोगरूप समभाव में स्थित मुनिराज को इतना ही विकल्प नहीं होता, निर्विकल्पता के द्वारा शुद्ध स्वरूप में ही निश्चल होकर समभावरूप अमृत का पान करते हैं—ऐसा समभाव वह मोक्ष का कारण है। इस समभाव में पर की परम उपेक्षा है; कहीं किसी को प्रसन्न रखना, किसी से प्रसन्न होना—ऐसी पर की अपेक्षा सर्वथा छूट गई है; निजस्वरूप के वेदन में ही लीनता है।

फाँसी से छुटकारा

अरे जीव? मोह के कारण तू प्रतिक्षण परभावों की फाँसी के ऊपर अपने आत्मा को चढ़ा रहा है.... उससे बचाना हो तो चैतन्यस्वरूप आत्मा को पहिचानकर उसका स्मरण कर। अज्ञान से आत्मा परभावों में फँसा हुआ है, पर को अपना मानने के अपराध से परभावों की फाँसी पर चढ़ा है; परभावों से भिन्न चिदानंदस्वरूप आत्मा की पहिचान करके अनुभव करना ही इस भव-भ्रमण की फाँसी से छूटने का उपाय है। अज्ञान ही महान फाँसी है; उससे छूटना हो तो सम्यग्ज्ञान कर।

समभाव द्वारा भवपार

सर्वत्र राग-द्वेष को छोड़कर स्वसंवेदनरूप समभाव के द्वारा ज्ञानी केवलज्ञान को साधता है। अहा, चैतन्य का स्वभाव! जिसको जगत में कहीं भी राग नहीं, जगत में कहीं भी द्वेष नहीं, विषमता नहीं, निजस्वरूप के वेदन में अत्यंत लीनता द्वारा उपशमभाव है—ऐसा समभाव, वह भवसागर से तिरने का उपाय है। शुद्धात्मा के स्वसंवेदन बिना सच्चा समभाव जागृत नहीं होता; शुद्धात्मा के अनुभवरूप समभाव में वीतरागता का परम आनंद है।

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	शास्त्र का अर्थ समझने की पद्धति	०.१०
१७	श्रावक धर्मप्रकाश	२.००
१८	अष्ट-प्रवचन (भाग-१)	१.५०
१९	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	१.५०
२०	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
२१	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	१.००
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२४	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२७	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२८	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२९	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
३०	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र)	६.००
३१	मोक्षमार्गप्रकाशक ७वाँ अध्याय	०.५०
३२	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०
३३	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	प्रेस में
३४	तत्त्वनिर्णय	०.२०
३५	शब्द-कोष	०.२०
३६	हितपद संग्रह (भाग-२)	०.७५

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)